WWW.GRADESETTER.COM

विश्व एवं भारत का भूगोल

(भौतिक, आर्थिक एवं सामाजिक भूगोल)

भाग-I : विश्व का भूगोल

1. भूगोल की परिभाषा एवं उसकी शाखाएं

भूगोल विषय के रूप में

भूगोल का शाब्दिक अर्थ है—भू-गोल, अर्थात् पृथ्वी गोल है। अंग्रेजी में भूगोल को ज्योग्राफी कहते हैं, ज्योग्राफी यूनानी शब्द है जो दो शब्दों के मेल से बना है—geo + graphy, जिसमें geo का अर्थ होता है, पृथ्वी तथा graphy का अर्थ लेखन, अर्थात् पृथ्वी का वर्णन। इस प्रकार, भूगोल के अंतर्गत पृथ्वी संबंधी तथ्यों का विश्लेषण एवं वर्णन किया जाता है, लेकिन भूगोल में केवल पृथ्वी का ही नहीं किया जाता, वरन् अन्य कई बातों का भी अध्ययन किया जाता है। विश्व प्रचलित और अप्रत्यक्ष रूप से मानव-जीवन से संबंध है। सर्वप्रथम, प्राचीन यूनानी विद्वान एरेटोस्थनीज ने भूगोल को धरातल के एक विशिष्ट विज्ञान के रूप में माना दी। इनके बाद हेरोडोटस, स्ट्रैबो और टॉलेमी ने भूगोल को सुनिश्चित स्वरूप प्रदान किया।

वस्तुतः, भूगोल का विषय-क्षेत्र इतना विस्तृत है, कि इसकी सीमाएं कई महत्वपूर्ण शास्त्रों से मिलती हैं, जैसे—अर्थशास्त्र, जीव विज्ञान, पर्यावरण विज्ञान, भौतिकी, रसायन, गणित, राजनीति, चित्रकला, भाषा विज्ञान इत्यादि। इस प्रकार, पिछले कुछ वर्षों में भूगोल का एक विषय के रूप में स्वरूप बदला है, इसकी विषय-वस्तु में काफी विस्तार आया है। उल्लेखनीय है कि भूगोल को एक विषय के रूप में प्रतिष्ठित कराने में प्राचीन भारतीय, यूनानी और अरबी विद्वानों की रचनाओं तथा कृतियों का बहुत अधिक योगदान है।

भूगोल के अंतर्गत मुख्य रूप से पृथ्वी की उत्पत्ति तथा उससे सम्बद्ध तथ्यों, विभिन्न देशों के निवासियों, उनके रहन-सहन, भू-आकृतियों, भूकंप, ज्वालामुखी, ज्वार-भाटा अन्य सामुद्रिक क्रियाओं तथा वायुमंडल इत्यादि का अध्ययन किया जाता है। इसके अतिरिक्त, मानव-कल्याण के सभी पक्षों को भी भूगोल के भीतर समाहित कर लिया गया है। इस प्रकार, भूगोल की दो शाखाएं स्पष्ट होती हैं—(A) भौतिक भूगोल, तथा; (B) मानव भूगोल। भौतिक भूगोल के अंतर्गत उन पक्षों का अध्ययन जाता है, जो प्राकृतिक है, जबकि मानव भूगोल के अंतर्गत भूगोल के मानवीय या मानव-निर्मित लक्षणों का अध्ययन किया जाता है।

A. भौतिक भूगोल तथा इसके अंतर्गत सम्मिलित उपक्षेत्र

भौतिक भूगोल: भूगोल की सबसे प्राचीन और पारंपरिक शाखा है। इसमें सौरमंडल की उत्पत्ति, तारे, सूर्य, चंद्रमा, पृथ्वी की संरचना, चट्टानों, भूआकृतियों, इनको उत्पन्न तथा प्रभावित करने वाले बल, वायुमंडल की संरचना, उसकी दशाएं, मौसम परिवर्तन, जलवायु, महासागरीय तल संरचना, जल धाराएं, लवणता, निक्षेप तथा ज्वार भाटा, मिट्टी, वनस्पति, पशु, मानव स्वास्थ्य एवं रोग इत्यादि का अध्ययन किया जाता है। सुविधा के लिए इन्हें अलग-अलग उप-शाखाओं में बांट दिया गया है, जिसका उच्च स्तर पर विशिष्ट अध्ययन किया जाता है। विषय-संबंधी विशेषताओं के कारण ही इन आवश्यकताओं या उप-क्षेत्रों का महत्व है। भौतिक भूगोल के अंतर्गत निम्नलिखित उप-क्षेत्र हैं।

भूगणित (Geodesy): इस उपशाखा के अंतर्गत पृथ्वी की आकृति का अध्ययन किया जाता है।

समुद्र विज्ञान (Oceanography): इसमें महासागरीय जल के भौतिक, रासायनिक एवं जैविक गुणों का अध्ययन किया जाता है। साथ ही उनकी उत्पत्ति, तल-संरचना, निक्षेपों, तरंगों और ज्वार-भाटा का भी अध्ययन किया जाता है।

भू-विज्ञान (Geology): इसके अंतर्गत शैलों, जीवाश्मों इत्यादि का अध्ययन किया जाना है। इसे भूगर्भ शास्त्र भी कहा जाता है।

भू-आकृति विज्ञान (Geomorphology): इसके अंतर्गत धरातल पर पायी जाने वाली स्थलाकृतियों तथा उनकी उत्पत्ति में सहायक प्रक्रमों, बलों तथा उनके विकास का अध्ययन किया जाता है।

मिश्रित भौतिक भूगोल (Complex physical Geography): इसके अंतर्गत पृथ्वी पर नदी, पर्वत, पठार इत्यादि भौगोलिक लक्षणों की उत्पत्ति, भू-रासायनिक विधियों, सामयिक आवर्तन तथा प्रादेशिक विभिन्नताओं इत्यादि का अध्ययन किया जाता है।

जल-विज्ञान (Hydrology): जल विज्ञान के अंतर्गत धरातल के प्रमुख जलक्षेत्रों, जैसे—नदियों, जलाशयों, सागरों, महासागरों तथा भूमिगत जल की स्थिति, स्वरूप और प्रमुख गतिविधियों का अध्ययन किया जाता है।

जलवायु-विज्ञान (Climatology): जलवायु-विज्ञान में वायुमंडल का समग्र रूप से अध्ययन किया जाता है। यह भौतिक भूगोल से विकसित उपशाखा है, जिसमें मौसम, बादल, वर्षा, वायुराशि, चक्रवात, प्रतिचक्रवात, पवन-व्यवस्था, विश्व के जलवायु प्रदेशों तथा वायुमंडल में होने वाले विभिन्न परिवर्तनों का अध्ययन किया जाता है।

हिमनद विज्ञान (Glaciology): हिमनद विज्ञान में हिमनद की उत्पत्ति, आकार-प्रकार, स्वरूप, गति उसके निक्षेपण तथा अपरदन कार्यों और उनसे निर्मित स्थलाकृतियों का अध्ययन किया जाता है।

भूआकृतिकी (Physiography): भूगोल की इस उपशाखा में भूपृष्ठ के प्राकृतिक लक्षणों का अध्ययन किया जाता है।

पर्वत विज्ञान (Orography): पर्वत विज्ञान में पर्वतों की उत्पत्ति, संरचना, उनके प्रकार, प्रभाव तथा उनकी विकास-प्रक्रिया का अध्ययन किया जाता है।

विश्व रचना विज्ञान (Cosmography): इस उपक्षेत्र के अंतर्गत खगोल, भूविज्ञान तथा भौतिक भूगोल का एक साथ या सम्मिलित अध्ययन किया जाता है। विशेष रूप से खगोलीय पिण्डों तथा पृथ्वी के प्रमुख लक्षणों का अध्ययन किया जाता है।

भूकम्प विज्ञान (Seismography): भौतिक भूगोल के अंतर्गत शामिल भूकम्प विषय को इस उपशाखा के अंतर्गत विस्तार से पढ़ा जाता है, जिसमें भूकंप की संरचना, उत्पत्ति, प्रकार, प्रभाव और बचाव का अध्ययन किया जाता है। यह भूकंप का वैज्ञानिक अध्ययन है।

भूगति विज्ञान (Geodynamics): भूगति विज्ञान में पृथ्वी की गतियों तथा भूगति बलों का अध्ययन किया जाता है, जैसे—गुरुत्वाकर्षण बल, अपकेंद्री बल, अभिकेंद्री बल, त्वरण बल इत्यादि। साथ ही इनसे जनित और प्रभावित पृथ्वी की गतियों का भी अध्ययन किया जाता है।

WWW.GRADESETTER.COM

WWW.GRADESETTER.COM

भूकालानुक्रम (Geochronology): इसके अंतर्गत पृथ्वी तथा उससे सम्बद्ध तत्वों की ऐतिहासिक समय सारणी तैयार की जाती है, जिसका प्रयोग भूगोल और भूविज्ञान में किया जाता है।

संरचनात्मक भूविज्ञान (Structural Geology): इस उपशाखा का प्रत्यक्ष और घनिष्ठ संबंध भौतिक भूगोल से है। इसमें चट्टानों के स्तरों, उनकी निक्षेपण स्थिति, आयु, स्वरूप, भूपृष्ठ पर उनके वितरण तथा फैलाव इत्यादि के अध्ययन को शामिल किया गया है।

चट्टान विज्ञान (Lithology): इसे अश्म विज्ञान भी कहा जाता है। इसके अंतर्गत चट्टानों के सैम्पल या मैक्रो मॉडल्स के आधार पर या उनकी मदद से चट्टानों का वैज्ञानिक अध्ययन किया जाता है।

पुरा भूगोल (Palaeogeography): पुरा भूगोल में भूपृष्ठ पर आदि काल से उपस्थित जल एवं स्थल सहतियों के प्रतिरूपों का अध्ययन किया जाता है।

सरोवर-विज्ञान (Limnology): इस उपशाखा के अंतर्गत ताजे या मीठे पानी की झीलों एवं सरोवरों की उत्पत्ति, विकास, वितरण तथा उनके संपूर्ण जीवन चक्र का वैज्ञानिक अध्ययन किया जाता है।

ज्वालामुखी विज्ञान (Vulcanology): ज्वालामुखी की उत्पत्ति ज्वालामुखी-प्रक्रिया, प्रकृति, उससे निकलने वाले पदार्थ, उनका संगठन वितरण प्रभाव इत्यादि सभी बातों का समग्र रूप से ज्वालामुखी विज्ञान में अध्ययन किया जाता है।

मृदा विज्ञान (Pedology): मृदा विज्ञान को मृत्तिका विज्ञान भी कहा जाता है। इसमें धरातल पर पायी जाने वाली मिट्टियों का समग्र रूप से अध्ययन किया जाता है, जिसके अंतर्गत मिट्टी का निर्माण, संरचना, रंग, प्रकृति, वितरण कृषि उपयोगिता इत्यादि सम्मिलित है।

वर्षण विज्ञान (Hyetology): वर्षण-विज्ञान में वर्षण से सम्बद्ध घटनाओं, जल वर्षा, फुहार, ओला, हिमपात इत्यादि का अध्ययन किया जाता है।

मौसम विज्ञान (Meteorology): मौसम विज्ञान में मौसम की भविष्यवाणी या पूर्वानुमान के लिए कई मौसम केंद्रों की स्थापना की जाती है। यहां से प्राप्त आंकड़ों और सिनाप्टिक चार्टों के द्वारा वायुमंडल में सक्रिय भौतिक घटनाओं एवं प्रकमों का विश्लेषणात्मक अध्ययन किया जाता है।

सूक्ष्म मौसम विज्ञान (Macrometeorology): इसे मौसम-विज्ञान की शाखा के रूप में लिया जा सकता है। इसमें वायुमंडल की सबसे निचली परत अर्थात् क्षोभमंडल का समग्र अध्ययन किया जाता है।

घास विज्ञान (Agrostology): घास विज्ञान में घासों की उत्पत्ति, भौगोलिक महत्व तथा उनके विश्व-वितरण का अध्ययन किया जाता है।

खनिज विज्ञान (Mineralogy): इसे भूगर्भ-विज्ञान की शाखा कहा जा सकता है। इसमें खनिजों की उत्पत्ति, उनकी प्राप्ति, गुणों, विशेषताओं तथा विश्व वितरण का अध्ययन किया जाता है।

जैव भूगोल (Bio geography): जैव भूगोल में वृक्षों, वनस्पतियों तथा जीव-जंतुओं के आपसी संबंध तथा इन पर भौगोलिक स्थितियों, दशाओं और जलवायु के प्रभावों का अध्ययन किया जाता है। इसके अंतर्गत कुछ विशिष्ट अध्ययन किए जाते हैं, जो निम्नांकित हैं—

(i) वनस्पति भूगोल (Botanical Geography): वनस्पति भूगोल में श्वस्तर पर वनस्पतियों की उत्पत्ति, विकास, वितरण एवं प्रकारों का अध्ययन ा जाता है। साथ ही वातावरण तथा वनस्पतियों के बीच पारस्परिक संबंध मानव जीवन पर उससे पड़ने वाले प्रभावों का भी किया जाता है।

(ii) पारिस्थितिकी (Ecology): इसमें जीव-जंतुओं तथा पेड़-पौधे के बीच क संबंधों तथा उनके बीच की जैविक क्रियाओं का अध्ययन किया ।

पादप भूगोल (Phytogeography): इसके अंतर्गत पौधों के वितरण, ातावरण से उनका संबंध, उनसे उत्पन्न प्रभाव तथा उनकी विशेषताओं किया जाता है।

ु भूगोल (Zoo-geography): जंतु भूगोल में पृथ्वी पर पाए जाने वाले जीव-जंतुओं की शारीरिक रचना, उत्पत्ति, विकास और वितरण का अध्ययन किया जाता है।

B. मानव-भूगोल (Human Geography)

मानव भूगोल की दूसरी शाखा है। मानव भूगोल में भौगोलिक वातावरण तथा मानव के क्रियाकलापों का अध्ययन किया जाता है। ये मानवीय क्रियाएं परिवर्तनशील होती हैं, जो भौगोलिक दशाओं से नियोजित और समायोजित होती हैं। समय के साथ यह भूगोल की इस शाखा में मानव की उत्पत्ति से लेकर वर्तमान समय तक रूप से भूगोल की इस शाखा में मानव की उत्पत्ति से लेकर वर्तमान समय तक भौगोलिक पर्यावरण के साथ उसके संबंधों का अध्ययन किया जाता है। जिसके मानव की संख्या, विकास, वितरण, उसके आर्थिक क्रियाकलाप राजनीतिक संरचा इत्यादि के अध्ययन को शामिल किया जाता है। मानव भूगोल के निम्नलिखित उपक्षेत्र हैं:

आर्थिक भूगोल (Economic Geography): आर्थिक भूगोल को मानव भूगोल की सर्वप्रमुख शाखा कहा जा सकता है। आर्थिक भूगोल में मानव की उन सारी आर्थिक क्रियाओं का अध्ययन किया जाता है, जो उसकी उत्पत्ति से लेकर वर्तमान तक विकसित हुयी या चल रही हैं।

मानव जाति विज्ञान (Ethnology): मानव-जाति का प्रजातीय इकाइयों के रूप में वैज्ञानिक अध्ययन, मानव-जाति विज्ञान कहलाता है।

प्रजातीय भूगोल (Racial Geography): प्राणिशास्त्रीय अवधारणा के आधार पर मानव-प्रजातियों की उत्पत्ति, विकास, विश्व-वितरण तथा उसके स्थानांतरण एवं विश्व-स्तर पर विभिन्न प्रजातियों का सम्मिश्रण का अध्ययन प्रजातीय भूगोल के अंतर्गत किया जाता है।

मानव भूगोल (Anthropogeography): इस उपशाखा में मानव का अध्ययन किया जाता है। मानव की उत्पत्ति तथा वर्तमान समय तक पर्यावरण के साथ उसके संबंधों एवं उसके विकास का अध्ययन किया जाता है।

जनसंख्या भूगोल (Population Geography): मानव भूगोल की इस शाखा में जनसंख्या, जनसंख्या वितरण, आयु, संरचना, घनत्व, वृद्धि, स्थानांतरण, व्यावसायिक संरचना तथा उनके आवासों का अध्ययन किया जाता है।

अधिवास भूगोल (Settlement Geography): ग्रामीण एवं नगरीय अधिवासों की स्थिति, उत्पत्ति, प्रतिरूप तथा व्यावसायिक संरचना इत्यादि का समग्र रूप से अध्ययन अधिवास भूगोल में किया जाता है।

सांस्कृतिक भूगोल (Cultural Geography): सांस्कृतिक भूगोल के अंतर्गत विश्व में पायी जाने वाली विभिन्न संस्कृतियों तथा भौगोलिक पर्यावरण के साथ उसके संबंधों का अध्ययन किया जाता है।

प्रादेशिक भूगोल (Regional Geography): धरातल का वर्गीकरण भौतिक एवं मानवीय समानताओं के आधार पर करके प्रादेशिक भूगोल का अध्ययन किया जाता है।

सामाजिक भूगोल (Social Geography): सामाजिक भूगोल के अंतर्गत नगरीय एवं ग्रामीण जनसंख्या, अधिवास, सामाजिक विशेषताओं, क्रिया-कलाप इत्यादि का अध्ययन किया जाता है।

कृषि भूगोल (Agricultural Geography): कृषि भूगोल में कृषि भौगोलिक दशाओं एवं विभिन्न फसलों के उत्पादन तथा वितरण प्रतिरूप अध्ययन किया जाता है।

नगरीय भूगोल (Urban Geography): नगरीय भूगोल को अ भूगोल की एक शाखा माना जाता है। इसमें शहरों तथा नगरों की उत्पत्ति, कार्यात्मक प्रतिरूप, विकास आदि का अध्ययन किया जाता है।

ग्रामीण भूगोल (Rural Geography): मानव भूगोल की इस में ग्रामीण क्षेत्रों के बसाव प्रतिरूप, कार्यात्मक विवरण तथा उनके अधि का अध्ययन किया जाता है।

राजनीतिक भूगोल (Political Geography): इसके अंतर्ग तत्वों और कारकों का विश्व के देशों की राजनीति पर प्रभाव, रा तथा अंतरराष्ट्रीय विवादों और सवधों का अध्ययन किया जाता

गणितीय भूगोल (Mathematical Geography): भूगो में भौगोलिक तत्वों का अध्ययन गणितीय विश्लेषण करते हुए

WWW.GRADESETTER.COM

WWW.GRADESETTER.COM

...र भूगोल की व्याख्या विशेषकर पृथ्वी, सौरमंडल और ग्रहों के ...

...al Geography): यह भूगोल की नवीन शाखा ... मानचित्र ... आंकड़ों का ... किया जाता है।

...गोल (Linguistic Geography): किसी भौगोलिक परिवेश में ... भाषा तथा भाषा पर भौगोलिक परिवेश के प्रभाव का अध्ययन ... किया जाता है।

...भूगोल (Behavioural Geography): क्षेत्रीय एवं स्थानिक ... ध्यान में रखते हुए मानव-व्यवहार एवं उस पर पड़ने वाले भौगोलिक ... व्यवहारिक भूगोल में किया जाता है।

...कला (Cartography): भूगोल में मानचित्रों का विशेष स्थान ... भौगोलिक अध्ययन के प्रमुख आधार हैं। मानचित्र-कला के ... मानचित्रों के निर्माण-विधियों का अध्ययन किया जाता है।

...भूगोल (Commercial Geography): वाणिज्यिक भूगोल ... के वाणिज्यिक कार्यों, विशेष कर, व्यापार का समग्र अध्ययन किया ...

...भूगोल (Industrial Geography): मानव भूगोल की इस ... विभिन्न उद्योगों के आधार, स्थानीकरण, वितरण, कच्चे माल की ... उत्पादन, समस्याओं, औद्योगिक उत्पादों के व्यापार एवं बाजारों ... अध्ययन किया जाता है।

...भूगोल (Transport Geography): परिवहन भूगोल के अंतर्गत ... के विभिन्न प्रकारों एवं साधनों का अध्ययन किया जाता है, साथ ही ... भौगोलिक प्रभावों, उद्योगों, कच्चे मालों एवं कृत्रिम वस्तुओं के व्यापार एवं वितरण ... पर यातायात तथा परिवहन के साधनों द्वारा पड़ने वाले प्रभावों का भी अध्ययन ... किया जाता है।

अनुप्रयुक्त भूगोल (Applied Geography): अनुप्रयुक्त भूगोल को भूगोल की नवीन शाखा माना जाता है। इसके अंतर्गत अल्प विकास, जनाधिक्य समस्या, मानव स्वास्थ्य संबंधी समस्याएं एवं सुविधाएं, नगरीय विकास, ग्रामीण एवं ग्रामीण भूमि के उपयोग जैसी मानवीय समस्याओं का अध्ययन अधिकतम कल्याण प्राप्ति के दृष्टिकोण से किया जाता है।

चिकित्सा भूगोल (Medical Geography): यह भूगोल की नवीन शाखा है। जिसमें विश्व स्तर पर, पर्यावरण-प्रदूषण तथा वायुमंडलीय अव्यवस्था व अशुद्धियों के कारण मानव जीवन पर पड़ने वाले नकारात्मक और हानिकारक प्रभावों एवं उनके निराकरण के उपायों का अध्ययन किया जाता है।

सैन्य भूगोल (Military Geography): भौगोलिक पृष्ठभूमि और परिप्रेक्ष्य में अंतरराष्ट्रीय सीमा-विवादों, युद्ध, संधियों के भौगोलिक कारकों, अंतरराष्ट्रीय शांति एवं सद्भावना, सामरिक महत्व के क्षेत्रों, राष्ट्रों के उपनिवेशों तथा संयुक्त राष्ट्र संघ की गतिविधियों का अध्ययन सैन्य भूगोल के अंतर्गत किया जाता है।

ऐतिहासिक भूगोल (Historical Geography): किसी भी प्रदेश के वर्तमान स्वरूप को समझने के लिए ऐतिहासिक भूगोल का अध्ययन किया जाता है। इसमें भौगोलिक क्षेत्रों के विकास की अवस्थाओं का वर्णन रहता है, अर्थात् उस क्षेत्र में अतीत से वर्तमान तक क्या-क्या परिवर्तन या विकास हुए।

भूगोल के अंतर्गत आने वाले ये सभी उपक्षेत्र वास्तव में भूगोल के प्रमुख आधार हैं, जो एक साथ मिलकर समग्र रूप से भूगोल का प्रतिनिधित्व करते हैं। इनका विशिष्टीकरण अध्ययन की सुविधा तथा मानव उपयोग या प्रयोग की दृष्टि से किया गया है। इसमें भौतिक भूगोल में भूगोल के प्राकृतिक पक्षों का तथा मानव-भूगोल में मानवीय पक्षों का अध्ययन किया जाता है।

2. प्रयोगात्मक भूगोल

भूगोलवेत्ता के औजार

...भौगोलिक अध्ययन का एक परम्परागत माध्यम तथा महत्वपूर्ण अंग ... पृथ्वी तल के किसी भाग के प्राकृतिक तथा अन्य घटनाओं का ... के द्वारा पृथ्वी तल पर पड़ने वाले प्रभाव, अर्थात् एक क्षेत्र का दूसरे से अंतर्संबंध को भली ... क्षेत्र पर पड़ने वाले प्रभाव को भली ... किया जा सकता है। इस प्रकार मानचित्र स्थानिक एवं क्षेत्रीय विश्लेषण ... तथा आर्थिक तरक्कियों के अध्ययन का एक महत्वपूर्ण साधन है। किसी देश ... आर्थिक मानचित्रों की किस्में तथा संख्याएं वहां की आर्थिक उन्नति स्तर एवं ... विभिन्न मानचित्रों की द्योतक होती हैं।

...मानचित्र का उद्देश्य आंकड़ों के संग्रहण और विश्लेषण, पृथ्वी के विविध ... दृश्यों (Landscape) के मापन तथा उन्हें उचित मापक पर भौगोलिक रूप ... प्रकार व्यक्त करना होता है कि प्रारूपों के कारकों का सुस्पष्ट ज्ञान हो ... मूलभूत आरंभिक अवधारणा में मानचित्र पृथ्वी तल का ऊपर से लिया हुआ ... चित्र है, जिस पर पहचान के लिए कुछ अक्षरों को जोड़ दिया जाता ... तल के ज्ञात तथ्यों का भी समावेश होता है। मानचित्र सामान्य रूप से ... तथ्यों को प्रदर्शित करता है जो दृष्टिगोचर नहीं होतीं, यथा-अक्षांश-देशांतर, ... रेखाएं, अक्षर लेखन आदि। आकार में मानचित्र वास्तविक प्रदर्शक ... से अति सूक्ष्म होता है, जिसको वह आनुपातिक रूप में प्रदर्शित करता ... मानचित्र के अंतर्गत सभी क्षेत्रीय विशेषताओं को प्रदर्शित किया जाता ... मानचित्र की रचना ऐसे मापक से करनी होती है जिससे उसके दो ... तथा उसकी धरातलीय संगति दूरी के बीच समन्वय स्थापित ...

...र

...: संदर्भ या संचालनीय मानचित्रों का सृजन पृथ्वी पर आपका ... उद्देश्य से किया जाता है। इस प्रकार मानचित्र आपको ... बताते हैं कि अमुक स्थान कहां पर स्थित है और इनका इस्तेमाल उस स्था ... तक पहुंचने में किया जा सकता है। एक सड़क या सामान्य राजमार्ग मानचि ... इस श्रेणी में शामिल किए जाते हैं।

विषयक मानचित्रः विषयक मानचित्रों का प्रयोग भौगोलिक अवधारण ... जैसे घनत्व वितरण, स्थानिक संबंध, परिमाण, संचलन इत्यादि को जानने में ... जाता है। वैश्विक जलवायु या मृदा मानचित्र विषयक मानचित्रों के विशेष उ ... हैं। विषयक मानचित्र पर भूगोल संबंधी आंकड़े अंकित करने की पांच ... तकनीकें हैं। इसमें सर्वाधिक प्रचलित तकनीक कोरोप्लीथ मानचित्र ... रंगों या आभाओं द्वारा मात्रा, घनत्व, प्रतिशत इत्यादि का प्रदर्शन किया ... प्रत्येक रंग सामान्यतः मूल्य की एक मात्रा का अंकन करता है।

सममान रेखा मानचित्रः अखण्डित रेखाओं से किसी मानचि ... तापक्रम तथा वायुदाब की समान मात्राओं को प्रदर्शित कर सकते हैं। ... मानचित्र समोच्च रेखाओं का प्रयोग समुद्री स्तर से उच्च स्थानों ... लिए करता है। समोच्च रेखाएं समुद्र तल से समान ऊंचाई वाले स्थ ... है। अधिक भूरी समोच्च रेखाओं वाले स्थानों को इंडेक्स समो ... हैं। कभी-कभी डैश रेखाओं को अनुपूरक समोच्च रेखाएं ... इस्तेमाल बेहद निम्न उच्चावच वाले क्षेत्रों के लिए किया जाता ... किसी सर्वेक्षण का एक निश्चित एवं अवस्थित संदर्भ बिंदु होता ... सर्वे इसके स्थान पर एक ऐसे चौड़े तीर का उपयोग करत ... पास एक समकोणीय छोटी सी रेखा होती है। यह तीर ठोस ... पर एक निश्चित ऊंचाई पर बना दिया जाता है।

अनुपातिक मानचित्र भौगोलिक सूचनाओं को मा ... अन्य तरीका है। क्रमिक वृत्त भूकंप प्रभावित क्षेत्रों की ... मानचित्र का प्रयोग, भौगोलिक सूचना व्यवस्था जोकि ...

WWW.GRADESETTER.COM

WWW.GRADESETTER.COM

आंकड़ों को पहचानने की क्षमता रखती है, के बीच संबंध दर्शाने के लिए किया जाता है।

बिंदु मानचित्र में बिंदुओं का वितरित मानचित्र पर सम्पूर्ण तथ्यों की उपस्थिति का वर्णन करता है। एक बिंदु मापक की इकाई की एक या कई इकाइयों के समान हो सकता है। बिंदु मानचित्र विशेष रूप से घटनाओं की बारम्बारता या मानचित्रित चरों के घनत्व को दर्शाने के लिए इस्तेमाल किए जाते हैं।

समान रेखा

समान रेखा समान मूल्य के क्षेत्रों को मिलाती है। उदाहरण के लिए समुद्रतल रेखा किसी मानचित्र अथवा चार्ट पर खींची गई वह रेखा है जो समान वायुमंडलीय दाब वाले स्थानों को मिलाती है। दाब पाठ्यांकों को एक-दूसरे से तुल्य अंतराल के लिए, ये दाब आमतौर पर माध्य समुद्र तल पर घटाकर संशोधित कर लिए जाते हैं।

- *समग्रभीरता रेखा*—मानचित्र पर खींची जाने वाली वह रेखा जो समुद्र तली पर समान गहराई वाले स्थानों को मिलाती है।
- *समतापित अंशा रेखा*—मानचित्र पर अंकित वह रेखा, जो उन स्थानों को मिलाती हुई खींची जाती है, जिन पर एक ही समय पर तड़ित झंझाएं आती हैं।
- *समताप रेखा*—वह रेखा जो उन स्थानों को मिलाती है जहां तापमान समान पाए जाते हैं।
- *समवर्षा रेखा*—वह रेखा जो मानचित्र पर अंकित उन सभी स्थानों को मिलाती है, जहां एक निश्चित अवधि में हान वाली वर्षा की मात्रा समान होती है।
- *समवातगति रेखा*—मौसमी मानचित्र या चार्ट पर उन स्थानों को मिलाने वाली रेखा जहां पर पवन की गति समान पाई जाती हो।
- *समभार रेखाओं*—मानचित्र पर कुछ नियम लागू होते हैं। प्रथम, दो भिन्न समभार रेखाएं आपस में एक-दूसरे को नहीं काट सकती। यदि वे ऐसा करती हैं, तो इसका तात्पर्य हुआ कि समान स्थान पर दो भिन्न प्रकार की स्थितियां हैं। द्वितीय, एक समभार रेखा के एक बिंदु के एक तरफ, दूसरी तरफ की अपेक्षा उच्च स्थिति होगी। तृतीय, समभार रेखा को शाखाओं में विभाजित नहीं किया जा सकता। चतुर्थ, समभार रेखाओं के मध्य गतिरोध मानचित्र पर स्थिर स्थिति को दिखाता है।

मानचित्र प्रक्षेप

सम्पूर्ण पृथ्वी अथवा उसके किसी भाग के नियमित ढंग से किसी समतल पर निश्चित मापक के अनुसार खींचे गए अंक्षाश एवं देशांतर रेखाओं के जाल को, जिसमें स्थित प्रत्येक बिंदु अथवा स्थान अपनी धरातलीय स्थिति के अनुरूप हो, मानचित्र प्रक्षेप कहते हैं। एक रेखाजाल पर अन्य विशेषताओं को खोकर किसी एक विशेषता को प्राप्त किया जा सकता है। उन विशेषताओं के आधार पर प्रक्षेपों को निम्न समूहों में वर्गीकृत किया जा सकता है:

- क्षेत्रफल
- दिशा
- दूरी
- आकार
- दिगंश
- पैमाना

उपरोक्त प्रत्येक समूह का स्वतंत्र अस्तित्व है यद्यपि कोई एक रेखा जाल 5 से अधिक समूहों में आ सकता है। जैसे ध्रुवाय दिगंशीय प्रक्षेपों की आकृति कारीय होती है तथा शुद्ध आकृति व शुद्ध क्षेत्रफल प्रदर्शित कर सकते हैं तथा बिंदु से दिग्मान शुद्ध होता है।

चेत्र मापक

निर्माण से पूर्व उसकी दोनों राशियों को एक इकाई में परिवर्तित करना क होता है। इससे मानचित्र की दूरी को धरातलीय दूरा से तुलना करना ो जाता है। मापक परिवर्तन हेतु सरल गणितीय विधियों का प्रयोग किया जैसे 1" = 1 मील; यदि इसे प्रदर्शक भिन्न में परिवर्तित करना हो तो यों को एक ही इकाई में रूपांतरित करना होगा, यदि दोनों राशियों परिवर्तित करें तो प्रदर्शक भिन्न युक्तिसंगत नहीं होगा; अतः दोनों ेवर्तित किया जा सकता। इस प्रकार सदैव दोनों राशियों में से छोटी चुनना उचित होगा, उदाहरण से–1" = 1 मील। चूंकि 1 मील =

63,360 इंच होता है, इसलिए प्रदर्शक भिन्न में परिवर्तित किया जा सकता है। यदि अन्य पैमाने को भी प्रदर्शक भिन्न में परिवर्तित किया जा सकता है। यदि उदाहरण से इसे और स्पष्ट किया जा सकता है—'यदि किसी मापक का प्रदर्शक भिन्न 1/1,000,000 हो तो मानचित्र में 1 सेमी. की दूरी धरातल पर कितने किमी. के बराबर होगी?

∵ मानचित्र पर 1 सेमी. = भूमि पर 1,000,000 सेमी. के बराबर है,

∴ 1 सेमी. = $\frac{1,000,000}{1,00,000}$ (∵ 1 किमी. = 1 लाख सेमी.)

∴ 1 सेमी. = 10 किमी.

इस प्रकार मानचित्र पर 1 सेमी. की दूरी धरातल पर 10 किमी. के बराबर होगी।

मापक श्रेणियां

मापक को मानचित्र पर प्रदर्शित करने के लिए छोटी, मध्यम और वृहद श्रेणियां होती हैं। वृहद मापक मानचित्र पर छोटे प्रारूप को विस्तृत रूप में दर्शाता है जैसे कि 1 : 24000। मध्यम मापक मानचित्र कृषि योजना के लिए बेहतर है जहां कम विवरण की आवश्यकता है। छोटे मापक पर सम्पूर्ण पृथ्वी का मानचित्र, महाद्वीप के विस्तृत प्रारूपों के सामान्यीकरण एवं अंतर्संबंधों को दर्शाता है, जिसकी सहायता से घटनाक्रमों के भविष्य का दिग्दर्शन किया जा सकता है।

हवाई छायाचित्र एवं दूरस्थ संवेदन

हवाई छायाचित्र

हवाई छायाचित्रों के समुचित उपयोग हेतु मापक का निर्धारण आवश्यक होता है। वायुयान से छायाचित्रों को दो प्रकार से लिया जाता है—प्रथम-लम्बवत् छायाचित्र, द्वितीय-तिर्यक छायाचित्र। तिर्यक छाया चित्र में सर्वेक्षण का उद्देश्य लम्बे व अधिक क्षेत्र का फोटो खींचना होता है। इस पर मापक की गणना महत्वपूर्ण नहीं होती किंतु लम्बवत् छायाचित्र में सभी विशेषताएं मानचित्र की भांति होती हैं अतः इसमें मापक का महत्व अधिक होता है। मापक निर्धारण में छायाचित्र लेते समय धरातल से वायुयान की ऊंचाई तथा धरातलीय दूरी का सर्वाधिक महत्व होता है। हवाई छायाचित्र का मापक छायाचित्र पर दो बिन्दुओं के मध्य दूरी तथा उनकी संगति धरातलीय दूरी के मध्य तुलना से प्राप्त किया जाता है।

दूरस्थ संवेदन एवं उपग्रह तंत्र

सूचना संग्राहक साधनों की मदद से दूरस्थ वस्तुओं, लक्ष्यों या प्रतिक्रियाओं से संबंधित सूचनाएं प्राप्त करने की पद्धति सुदूर संवेदन कहलाती है। इसके अंतर्गत छाया चित्र एवं विद्युत चुम्बकीय अभिलेख प्राप्त करना तथा उनके प्रसंस्करण व विश्लेषण की विधियां सम्मिलित की जाती है। किसी भी सुदूर संवेदन प्रणाली के प्रेषक व अभिग्राही केन्द्र, संचार माध्यम एवं उपग्रह तीन मुख्य भाग होते है। भारतीय दूरसंवेदी प्रणाली इसरो द्वारा संचालित की जाती हैं। 'आई.आर.एस.' तंत्र राष्ट्रीय स्तर पर राष्ट्रीय प्राकृतिक संसाधन प्रबंधन तंत्र के अंतर्गत प्लानिंग समिति के द्वारा कार्यान्वित किया जाता है। वर्तमान में 'आई.आर.एस.' तंत्र के 8 उपग्रह कार्यशील हैं जो इसे विश्व का सबसे बड़ा सुदूर संवेदन उपग्रह पुंज बनाते हैं। उल्लेखनीय है कि, यह तंत्र विभिन्न आकाशी विभेदनों (1 मीटर से 180 मीटर) में प्रतिबिम्बिकी प्रदान करता है।

भौगोलिक सूचना प्रणाली

भौगोलिक सूचना तंत्र कम्प्यूटर पर आधारित एक तंत्र है, जिसमें भू-संदर्भित वहुयः आंकड़ों का विश्लेषण होता है। इसके माध्यम से संचित भौगोलिक आंकड़ों, मानचित्रों तथा चयनित आंकड़ा आधार प्राप्त किया जा सकता है। इससे भू-आवरण आंकड़ा आधार में वन-क्षेत्र, प्रमुख सड़कों तथा प्रशासनिक सीमाओं से संबंधित संदर्भ को दर्शाना सरल होता है। 1960 ई. में इस विधा पर कार्य प्रारंभ हुआ था, यद्यपि भारत के लिए यह नवीन प्रविधि है। इसमें वर्तमान में भूमि सूचना प्रणाली, पर्यावरणीय सूचना प्रणाली आदि को भी सम्मिलित किया जाता है।

WWW.GRADESETTER.COM

WWW.GRADESETTER.COM

सृजन की जांच या परीक्षण करने के लिए किया जाता है।

सह-सम्बन्ध तथा समाश्रयण विश्लेषण बेहद प्रयोग की जाने वाली दो सांख्यिकीय तकनीकें हैं (सह-सम्बन्ध) वह मापन प्रदान करता है जिससे दो या अधिक चरों के बीच संबंधों की गणना की जा सकती है। सह-सम्बन्ध गुणांक द्वारा दो चरों के अंतर्संबंधों की मात्रा तथा दिशा के ज्ञान के अतिरिक्त हमारी उत्कंठा सम्बन्ध-स्वरूपों को प्राप्त करने की भी होती है। परिणामस्वरूप समाश्रयण विश्लेषण एक परम्परागत सांख्यिकीय विधि है, जिससे दो या अधिक आंकड़ों के संबंधों की उपनति की जानकारी प्राप्त की जाती है।

ग्लोबल पोजिशनिंग सिस्टम (जीपीएस)

ग्लोबल पोजिशनिंग सिस्टम एक ग्लोबल नेवीगेशन सेटेलाइट सिस्टम है। इसका विकास सर्वप्रथम अमेरिका के रक्षा विभाग द्वारा किया गया। 27 अप्रैल, 1995 से जीपीएस ने पूरी तरह से काम करना शुरू कर दिया था। पहले सेटेलाइट नवीगशन सिस्टम ट्रांजिट का प्रयोग अमेरिकी नौसेना ने 1960 में किया था। जीपीएस रिसीवर अपनी स्थिति का आकलन पृथ्वी से ऊपर रखे गए जीपीएस सैटेलाइट द्वारा भेजे जाने वाले सिग्नलों के आधार पर करता है। प्रत्येक सैटेलाइट लगातार मैसेज ट्रांसमिट करता रहता है। रिसीवर प्रत्येक मैसेज का ट्रांजिट समय नोट करता है और प्रत्येक सैटेलाइट से दूरी की गणना करता है। जीपीएस सिस्टम में चार सैटेलाइटों की आवश्यकता होती है, क्योंकि ऐसा माना जाता है कि रिसीवर बेहतर गणना के लिए चार सेटोलाइटों का प्रयोग करता है। इससे यूजर की थ्री डी स्थिति (अक्षांश, देशांतर रेखा एवं उन्नतांश के बारे में पता चल जाता है। एक बार जीपीएस की स्थिति पता चलने के बाद जीपीएस यूनिट दूसरी जानकारियां, जैसे—स्पीड, ट्रैक, ट्रिप, दूरी, जगह से दूरी, सूर्य उगने एवं डूबने के बारे में जानकारी एकत्र कर लेता है। वर्तमान में जीपीएस का प्रयोग बड़े पैमाने पर होने लगा है। नक्शा बनाने, जमीन का सर्वेक्षण करने, व्यापारिक-वैज्ञानिक प्रयोग, सर्विलांस एवं ट्रैक करने तथा जियोकोचिंग के दृष्टिकोण से यह बेहद जरूरी एवं महत्वपूर्ण है।

स्थानिक व्यवस्था

एक भूगोलवेत्ता का मूलभूत कार्य अवस्थिति वर्णन से प्रारंभ होता है। स्थानिक संदर्भ व्यवस्था का सृजन स्थलीय तथ्य संबंधी अवस्थिति की सटीक पहचान के लिए किया जाता है।

अक्षांश एवं देशांतर

किसी वस्तु या विंदु की पृथ्वी पर अवस्थिति अक्षांश व देशांतर के माध्यम से नियत की जाती है। किसी स्थान का देशांतर उस स्थान से गुजरने वाले याम्योत्तर व प्रधान याम्योत्तर के मध्य कोणीय दूरी होती है। प्रधान याम्योत्तर 0° पर है व लंदन स्थित रॉयल वेधशाला (ग्रीनविच) से गुजरती है। यह पृथ्वी को देशांतरीय तौर पर पूर्वी व पश्चिमी भागों में विभाजित करता है।

पृथ्वी की सतह पर किसी बिंदु की भूमध्य रेखा से कोणीय दूरी को पृथ्वी के केंद्र से अंश (degree) में नापते हैं। भूमध्य रेखा 0° है व दक्षिणी व उत्तरी ध्रुव क्रमशः 90°S व 90°N हैं। किसी स्थान को उसके अक्षांश व देशांतर की सुनिश्चित एवं सुस्पष्ट जानकारी होने पर ग्लोब पर निश्चित रूप से चिंहित किया जा सकता है।

1° अक्षांश के मध्य की दूरी लगभग 111 किमी. (69 मील) होती है। पृथ्वी की गोलाभ आकृति के कारण यह दूरी, विषुवत रेखा से ध्रुवों की ओर थोड़ी अधिक होती जाती है। $23\frac{1}{2}$° उत्तरी एवं दक्षिणी अक्षांश रेखा को क्रमशः कर्क रेखा एवं मकर रेखा कहा जाता है। $66\frac{1}{2}$° उत्तरी एवं दक्षिणी अक्षांश रेखा को क्रमशः आर्कटिक वृत्त एवं अंटार्कटिक वृत्त कहा जाता है।

ग्लोब पर उत्तरोत्तर दो अक्षांश रेखाओं के मध्य धरातलीय दूरी लगभग 111 किलोमीटर होती है। किसी स्थान का अक्षांश ध्रुव तारे की सहायता से ज्ञात किया जा सकता है। दक्षिणी गोलार्द्ध में 'सदर्न क्रास' नामक तारे की सहायता से अक्षांश ज्ञात किया जा सकता है। उत्तरी गोलार्द्ध में ध्रुव तारे को उन्नतांश यंत्र से ज्ञात किया जा सकता है। क्रोनोमीटर नामक यंत्र की सहायता से ग्री

WWW.GRADESETTER.COM

WWW.GRADESETTER.COM

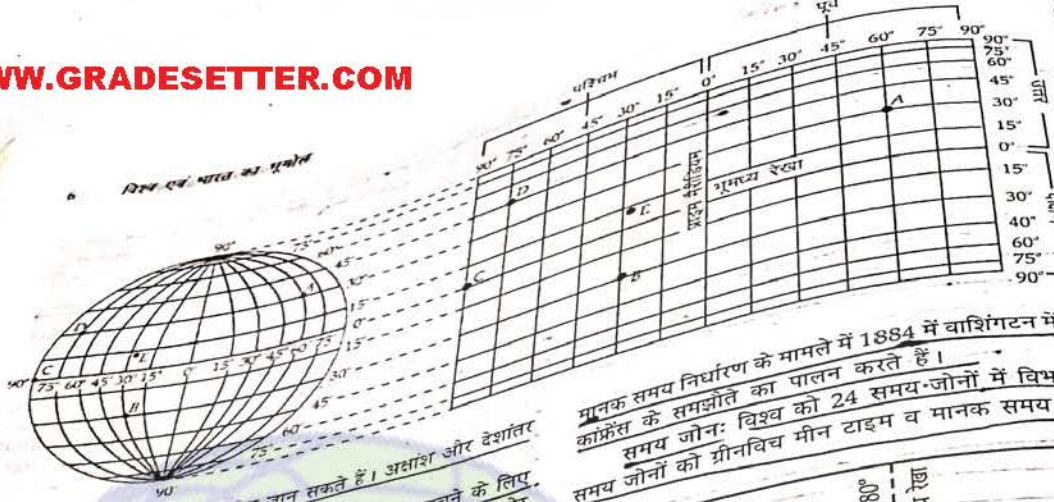

के साथ-साथ किसी भी स्थान का देशांतर जान सकते हैं। अक्षांश और देशांतर रेखाओं के जाल को मैश अथवा ग्रिड कहते हैं।

समयः समय संबंधों को सरल बनाने व भ्रम की स्थिति से बचने के लिए पृथ्वी को स्थिर माना जाता है एवं यह माना जाता है कि सूर्य पृथ्वी के चारों ओर 24 घंटे में एक चक्कर लगाता है।

समय व देशांतरः पृथ्वी अपने अक्ष पर एक चक्कर लगाने में 24 घंटे का समय लेती है। दूसरे शब्दों में 360° घूमने में पृथ्वी 24 घंटे लगाती है इसलिए 1 घंटे में पृथ्वी 15° या 4 मिनट में 1° देशांतर घूम जाती है। समय पेटियों (बेल्ट) के निर्माण का आधार उपरोक्त तथ्य को बनाया गया है।

स्थानीय समयः स्थानीय याम्योत्तर के आधार पर औसत सौर समय की गणना की जाती है व यही समय उस स्थान का स्थानीय समय होता है। एक याम्योत्तर पर स्थित सभी स्थलों का स्थानीय समय एक ही होता है। विभिन्न याम्योत्तरों पर स्थानीय समय भी भिन्न होता है। 1° देशांतर के अंतर पर 4 मिनट का समयांतर उत्पन्न होता है।

मानक समयः मानक समय किसी स्वेच्छा से चयनित याम्योत्तर का स्थानीय समय होता है जो एक विशिष्ट क्षेत्र या देश के लिए मानक समय को निर्धारित करता है। यह समय उस क्षेत्र के अंतर्गत चयनित याम्योत्तर के दोनों ओर के याम्योत्तरों पर लागू होता है। मानक समय स्थानीय समय से भिन्न होते हुये भी मानक समय निर्धारण के मामले में 1884 में वाशिंगटन में हुई इंटरनेशनल मेरिडियन कांफ्रेंस के समझौते का पालन करते हैं।

समय जोनः विश्व को 24 समय-जोनों में विभाजित किया जाता है। इन समय जोनों को ग्रीनविच मीन टाइम व मानक समय में एक घंटे के अंतराल से

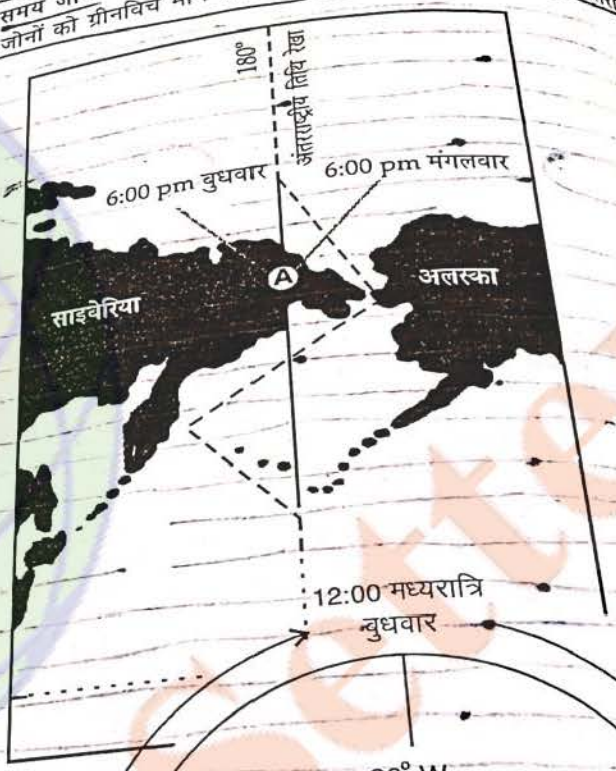

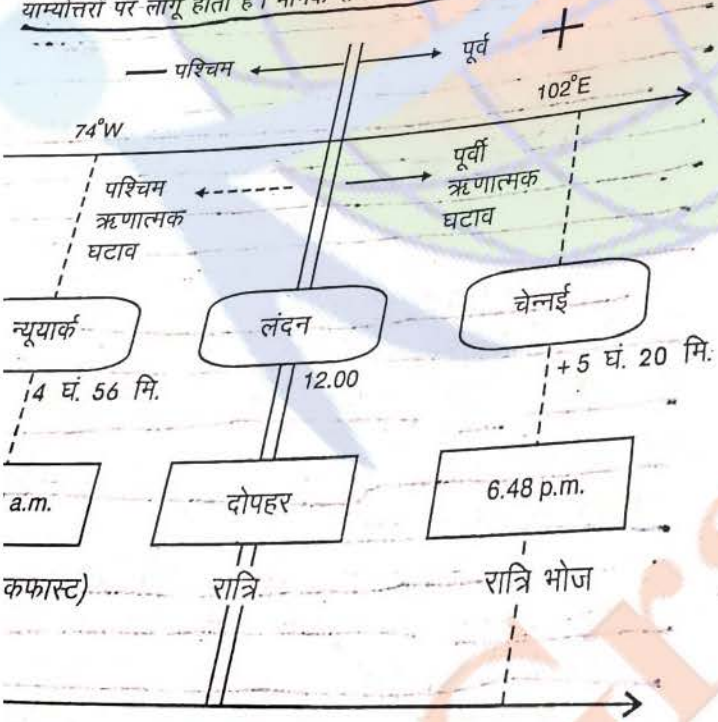

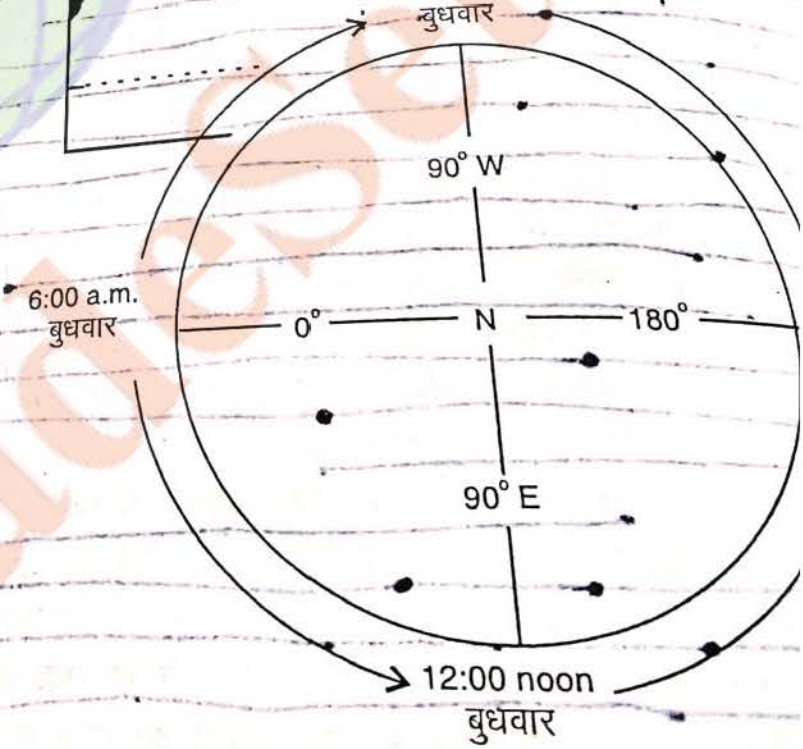

WWW.GRADESETTER.COM

WWW.GRADESETTER.COM

विभाजित किया गया है। इन जोनों को दिशा निर्धारित करने के लिए ...ने वाले जोनों को तेज (fast) जोन व ग्रीनविच के पश्चिम ...जोनों का धीमा (slow) निर्धारित किया गया है। ग्रीनविच योग्योत्तर ...जो कि ग्रीनलैण्ड व नार्वीनियन सागर व ब्रिटेन, फ्रांस, स्पेन, ...भाग, बुर्कीनाफासो व घाना व दक्षिण अटलांटिक समुद्र से गुजरता ...जिसका क्षेत्रफल अधिक है और वे पूर्व व पश्चिम में अधिक फैले ...एक से अधिक समय जोन की आवश्यकता होती है। जैसे संयुक्त ...में सात समय जोन, आस्ट्रेलिया में तीन समय जोन व रूस में ...जोन हैं।

...सलिए कि एक बड़ा देश है परंतु संपूर्ण देश के लिए एक ही समय जोन ...भारत में मानक समय 82½°E देशांतर से निर्धारित किया ...इलाहाबाद के निकट से गुजरती है।

...तिथि रेखाः 1884 में वाशिंगटन में संपन्न इंटरनेशनल ...य तिथि रेखा निर्धारित किया ...180 व याम्योत्तर को अंतरराष्ट्रीय तिथि रेखा निर्धारित किया ...इसलिए किया गया ताकि विभिन्न देशों के मध्य यात्रा कर रहे ...। ऐसा इसलिए किया गया ताकि विभिन्न देशों के मध्य यात्रा कर रहे ...कुछ स्थानों पर 1 दिन का अंतर होने के कारण परेशानी न उठानी पड़े। ग्रीनविच मेरीडियन से गणना करते हुये इस रेखा (180वां याम्योत्तर) के पूर्व वाले क्षेत्र एक दिन आगे होंगे या दूसरे शब्दों में इस रेखा से पश्चिम वाले क्षेत्रों से 12 घंटे आगे होंगे। हालांकि अंतरराष्ट्रीय तिथि रेखा का अधिकांश भाग समुद्र से गुजरता है परंतु इस रेखा को पूर्व व पश्चिम दिशा में खिसकाया गया है ताकि कुछ भू-स्थल एक ही कैलेण्डर दिवस का पालन कर सकें। अंतरराष्ट्रीय तिथि रेखा आर्कटिक सागर, चुकी सागर (Chuckchi), बेरिंग स्ट्रेट व प्रशांत सागर से गुजरती है। यह रेखा रैंगल द्वीप व रूसी भूमि के ऊपर से नहीं गुजरती। भूमध्य रेखा के दक्षिण में इस रेखा को 7½° पूर्व की ओर खिसकाया गया है ताकि फिजी व टांगो द्वीप समूह एक ही जोन में रहे।

जब यात्री पश्चिमी दिशा में यात्रा करते हुये तिथि रेखा को पार करता है उसे एक दिन की हानि होती है क्योंकि इस क्षेत्र में समय 12 घंटे पीछे चल रहा होता है (जैसे बुधवार के बाद बुधवार आना)। परंतु यदि यात्री पूर्व की यात्रा करते हुए तिथि रेखा को पार करता है तो एक दिन का लाभ होता है जैसे यदि वह बुधवार को यात्रा आरंभ करता है तो तिथि रेखा पार करने पर नये क्षेत्र में शुक्रवार का दिन उसे प्राप्त होगा।

3. भू-व्यवस्था

...(पृथ्वी) व्यवस्था

...व्यवस्था को अन्योन्यक्रिया करने वाले वस्तुओं के संग्रहण के रूप में परिभाषित ...जाता है। पृथ्वी सौरमंडल का एक हिस्सा है, जिसमें सूर्य और अन्य खगोलीय ...जो गुरुत्वाकर्षण द्वारा इससे जुड़े होते हैं, शामिल होते हैं। हालांकि पृथ्वी ...अन्य ग्रहों के साथ पारस्परिक रूप से कम अन्योन्यक्रिया होती है। भू-व्यवस्था ...ऊर्जा प्राप्त करती है और गुरुत्वीय आकर्षण चंद्रमा को पृथ्वी के कक्ष के ...तुल्य बनाए रखता है।

...व्यवस्था के प्रकार

...व्यवस्था को मुक्त, बंद एवं पृथक् व्यवस्था में वर्गीकृत किया जा सकता है। मुक्त ...खुली व्यवस्था अपनी सीमा के आर-पार ऊर्जा एवं द्रव्यमान को गुजरने देती ...एक बंद व्यवस्था ऊर्जा को तो अपनी सीमाओं से गुजरने देती है लेकिन ...के मामले में अनुमति नहीं देती। एक विलग व्यवस्था अपनी सीमाओं ...ऊर्जा को और न ही द्रव्यमान को गुजरने की अनुमति देती है।

...सागर, खुली व्यवस्था का एक उदाहरण है। महासागर जलमंडल का ...है और महासागर का पटल जलमंडल और वायुमंडल के मध्य अंतर्क्रिया ...रता है। सौर विकिरण वायुमंडल से गुजरता है और महासागर द्वारा ...या जाता है। अवशोषित की गई ऊर्जा महासागर से जल का ...ी है। जैसाकि वाष्पित जल वायुमंडल में प्रवेश करता है, ये अपने ...भीकृत करने में लगने वाली ऊष्मा को भी ले जाता है (इसे गुप्त ...वायु में प्रवेश करती है तो यह वायु की आर्द्रता में वृद्धि करती ...स्तर पर्याप्त रूप से बढ़ जाता है तो संघनन की प्रक्रिया होती ...होती है, और बादलों का निर्माण होता है। निरंतर संघनन ...होती है और पुनः महासागर में गिरती है। इस प्रकार, ऊर्जा ...ण, गुप्त ऊष्मा) और द्रव्यमान (जलवाष्प एवं वर्षण) भी ...न की सीमा के मध्य एवं आर-पार गुजरते हैं। भू-(पृथ्वी) ...खुली व्यवस्था माना जाता है क्योंकि ऊर्जा एवं द्रव्यमान ...ारस्परिक रूप से गुजरते हैं।

...एक बंद व्यवस्था है। भू-व्यवस्था की सीमा वायुमण्डल ...पृथ्वी की व्यवस्था और शेष ब्रह्माण्ड के बीच किसी ...निमय नहीं होता। हालांकि सौर विकिरण के रूप ...वायुमण्डल के द्वारा पृथ्वी के धरातल तक पहुंचती ...उत्सर्जन कर अपनी सीमाओं के पास अंतरिक्ष में इसे लौटा देती है। इस प्रकार, ऊर्जा पृथ्वी की सीमाओं के आर-पार गुजरती है लेकिन द्रव्यमान नहीं, जो इसे बंद व्यवस्था बनाता है।

तंत्रों या व्यवस्थाओं के मध्य अंतरापृष्ठ को पहचानना सदैव सरल नहीं होता जबकि कुछ मामलों में यह आसान होता है। तटरेखा पर जलमण्डल और स्थलमण्डल के बीच अंतरापृष्ठ को पहचानना आसान होता है जैसाकि द्रव्य एवं ठोस के बीच सीमा स्पष्ट हो। वायुमण्डल और जलमण्डल के मध्य अंतरापृष्ठ को पहचानना थोड़ा मुश्किल होता है, जैसाकि जलमण्डल में धरातल का द्रवित जल और वायु में मौजूद जल दोनों ही शामिल होते हैं।

सौरमण्डल

सूर्य के परिवार को सौरमण्डल कहते हैं। इसमें सूर्य एक नक्षत्र है जो प्रकाश एवं ऊष्मा प्रदान करता है। सौमण्डल में सूर्य की परिक्रमा करने वाले पृथ्वी सहित आठ ग्रह, एक छोटा (बौना) ग्रह (प्लूटो), उपग्रह, क्षुद्रग्रह, उल्काएं, पुच्छल तारे एवं नीहारिकाएं आदि सम्मिलित हैं। जो ग्रह सूर्य के जितने निकट है, उसकी परिभ्रमण गति भी उतनी ही अधिक है। साथ ही ये ग्रह अपनी धुरी पर घूर्णन भी करते हैं। ग्रहों का अपना प्रकाश नहीं होता, जबकि तारों का अपना प्रकाश होता है।

आंतरिक ग्रहः सबसे बड़ा एवं घना आंतरिक ग्रह पृथ्वी है। इसमें बुध, शुक्र और मंगल ग्रह भी प्रमुख हैं। घनी चट्टानों से निर्मित होने और पृथ्वी से समानता के कारण आंतरिक ग्रहों को 'पार्थिव ग्रह' भी कहा जाता है।

बाह्य ग्रहः आंतरिक ग्रह की तुलना में इसका आकार बड़ा एवं उपग्रहों की संख्या अधिक होती है। बृहस्पति, शनि, यूरेनस एवं नेप्च्यून प्रमुख बाह्य ग्रह हैं।

सूर्य एक विशाल थर्मोन्यूक्लियर भट्टी है जिसका आंतरिक तापमान अनुमानतः 15 मिलियन डिग्री सेल्सियस है। हाइड्रोजन के अणुओं की टक्कर इतने जोरदार ढंग से और उच्च गति से होती है कि वे संलग्न होकर हीलियम का नाभिक बनाते हैं जिसके केंद्र से काफी मात्रा में ऊष्मा उत्पन्न होती है।

प्रकाशमण्डल (फोटोस्फीयर): सूर्य का जो भाग हमें आंखों से दिखाई दे है, उसे प्रकाशमण्डल (फोटोस्फीयर) कहते हैं। सूर्य के प्रकाशमण्डल का तापम 6000° सेल्सियस होता है।

वर्णमण्डल (क्रोमोस्फीयर): वायुमण्डल द्वारा प्रकाश का अवशोषण कर जाने के कारण 'प्रकाश मण्डल' के किनारे दीप्तिमान सौर नहीं दिखायी देते। रंग के इस भाग को वर्णमण्डल कहा जाता है। क्रोमोस्फीयर का 'तापमान 32, सेल्सियस है।

WWW.GRADESETTER.COM

WWW.GRADESETTER.COM

फ्रॉन हॉफर रेखाएं: सौर वर्णक्रम में सात रंगों के अलावा कई काली रेखाएं दिखायी देती हैं जिन्हें फ्रॉन हॉफर रेखाएं कहा जाता है। इन रेखाओं की तीव्रता एवं मोटाई से तत्व विशेष के घनत्व एवं तापमान का ज्ञान होता है। इनमें से प्रत्येक रेखा द्वारा सौर वायुमण्डल में उपस्थित किसी न किसी तत्व को इंगित किया जाता है।

परिमण्डल या कोरोना: सूर्यग्रहण के समय दिखायी देने वाले सूर्य के बाह्यतम भाग को परिमण्डल कहते हैं। इसे सूर्य मुकुट (कोरोना) भी कहा जाता है। परिमण्डल का तापमान 15,00,000° सेल्सियस है।

सौर ज्वाला: सूर्य से प्रत्येक दिशा में प्रक्षेपित प्रोटान्स का काफी अधिक उत्सर्जन कभी-कभी तकरीबन 7000 किलोमीटर प्रति सेकण्ड की गति तक तीव्र होकर कोरोना को पार करके अंतरिक्ष में चला जाता है जिसे 'सौर ज्वाला' नाम दिया गया है।

सौर पवन: सौरमण्डल से लगातार निकलने वाली कम प्रभावशाली प्रोटान्स की तीव्रधारा को सौर पवन कहते हैं।

[नोट: सौरमण्डल से संबंधित विस्तृत जानकारी इस पुस्तक के सामान्य विज्ञान खण्ड में प्रस्तुत की गई है।]

पृथ्वी की उत्पत्ति संबंधी परिकल्पनाएं

सर्वप्रथम 1749 ई. में फ्रांसीसी वैज्ञानिक 'कांस्टे डी बफन' ने पृथ्वी की उत्पत्ति के सम्बंध में वैज्ञानिक परिकल्पना का प्रतिपादन किया; इसके पश्चात् अनेक विद्वानों ने इस दिशा में सराहनीय प्रयास किया है। ग्रहों की उत्पत्ति में सम्मिलित तारों की संख्या के आधार पर इन्हें दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—

1. अद्वैतवादी संकल्पना (Monistic concept)
2. द्वैतवादी संकल्पना (Dualistic Concept)

अद्वैतवादी संकल्पना को 'Parental Hypothesis' भी कहते हैं। इसके अनुसार पृथ्वी एवं सौर मण्डल की उत्पत्ति केवल एक ही वस्तु (तारे) से मानी जाती है। इस विचारधारा के पक्ष में प्रमुख नाम—बफन, कान्ट, लाप्लास, रॉस, लाकियर आदि उल्लेखनीय हैं। इनसे सम्बद्ध प्रमुख संकल्पनाएं इस प्रकार हैं—

कान्ट की वायव्यराशि परिकल्पना: 1755 ई. में कान्ट ने 'न्यूटन के गुरुत्वाकर्षण नियम' के आधार पर अपनी संकल्पना का प्रतिपादन किया। इनके अनुसार, अतीतकाल में ब्रह्माण्ड में दैव निर्मित आद्य पदार्थ बिखरे हुए थे। प्रारंभ में ये कठोर, शीतल तथा गतिहीन थे, आपसी आकर्षण के कारण ये एक-दूसरे से टकराने लगे। टकराव के कारण इनमें ताप तथा भ्रमण-गति का आविर्भाव हुआ, जिससे ये कण वायव्य राशि में परिवर्तित होने लगे। वायव्यराशि धीरे-धीरे एक गर्म व गतिशील निहारिका के रूप में बदल गयी, जिसमें केंद्रापसारित बल कार्यरत था। गति तीव्र होने के कारण निहारिका से एक-एक करके नौ छल्ले अलग हो गये जिससे ग्रहों का निर्माण हुआ था। निहारिका का शेष भाग सूर्य बना।

लाप्लास की निहारिका परिकल्पना: 1796 ई. में लाप्लास ने 'Exposition of the world system' में अपनी परिकल्पना का उल्लेख किया। इसकी परिकल्पना कान्ट पर एक सुधार मात्र थी। इनके अनुसार, ब्रह्माण्ड में एक तप्त एवं गतिशील पिण्ड था जिसे इन्होंने निहारिका की संज्ञा दी। इसके गतिशील होने के कारण विकिरण द्वारा ऊष्मा का ह्रास होने लगा, जिससे वाह्य भाग में संकुचन होने लगा, परिणामस्वरूप निहारिका के आयतन व आकार में ह्रास होने लगा। अधिक गति के कारण निहारिका में केंद्रापसारी बल उत्पन्न हुआ तथा मध्य वाहर की ओर उभरने लगा। इस प्रकार ऊपरी भाग, निरंतर शीतल होते सिकुड़ते मध्य भाग से छल्ले के रूप में पृथक होने लगा। कुछ समय बाद र छल्ला निहारिका से अलग होकर बाहर आया तथा निहारिका का चक्कर गा। इसी प्रकार नौ ग्रह तथा उनके उपग्रहों की उत्पत्ति हुई। निहारिका श भाग सूर्य बना।

की परिकल्पना: उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य में रॉस (ROCHE) ने परिकल्पना में संशोधन प्रस्तुत किया। लाप्लास के अनुसार निहारिका ही भारी छल्ले से कई पतले छल्ले बाहर निकले, परंतु रॉस की मुख्य निहारिका से ही कई पतले छल्ले क्रमशः अलग हो गये। प्रत्येक छल्ला घनीभूत होकर ग्रह बन गया। इसी क्रम के जारी रहने से अन्त ग्रहों की उत्पत्ति हुई तथा शेष भाग सूर्य बना।

एक तारक (अद्वैत) परिकल्पना के विपरीत कुछ विद्वानों ने द्वैतवादी विचार का प्रतिपादन किया, जिसमें पृथ्वी की उत्पत्ति एक से अधिक तारों के संयोग से मानी गयी है। इसे 'Bi-parental concept' भी कहते हैं। प्रमुख वैज्ञानिक विवेचन निम्नवत है—

चैम्बरलिन की ग्रहाणु परिकल्पना (Planetesimal Hypothesis): चैम्बरलिन (1904) के अनुसार सूर्य के निकट से किसी विशाल तारा के गुजरने से ज्वारीय शक्ति के कारण सूर्य से एक फिलामेन्ट वाहर निकला तथा कोणीय संवेग के कारण सूर्य का चक्कर लगाने लगा। यह फिलामेन्ट गैस एवं धूलिकणों से निर्मित था जिसे ग्रहाणु कहा गया। इसी के विखण्डन से ग्रहों की उत्पत्ति हुई।

जेम्सजीन्स एवं जेफ्रीज की ज्वारीय परिकल्पना: इस सिद्धांत का प्रतिपादन 1919 ई. में सर जेम्स जीन्स ने किया था। बाद में 1929 में जेफ्रीज ने इसका संशोधन किया। यह आधुनिक परिकल्पनाओं में से एक है। जेम्स ने इसके स्पष्टीकरण हेतु कुछ मान्यताओं का सहारा लिया है—

(i) सौर-मण्डल सूर्य तथा एक साथी तारे के संयोग से निर्मित हुआ।
(ii) प्रारंभिक अवस्था में सूर्य एक गैसीय गोला था।
(iii) ब्रह्माण्ड में सूर्य का एक साथी तारा था।
(iv) सूर्य में मात्र घूर्णन गति था, परिभ्रमणन नहीं।
(v) साथी तारे की कक्षा सूर्य के निकट थी।
(vi) साथी तारे की तुलना में विशाल था।
(vii) साथी तारा सूर्य की ज्वारीय शक्ति का प्रभाव सूर्य के वाह्य भाग पर पड़ा।

उपरोक्त मान्यताओं के आधार पर जेम्स ने निष्कर्ष निकाला कि साथी तारा अपनी परिभ्रमण कक्षा में घूर्णन करता हुआ सूर्य की ओर आ रहा था। उसकी आकर्षण शक्ति (ज्वारीय शक्ति) के कारण सूर्य से एक फिलामेन्ट निकलकर तारे के पीछे आकर्षित हुआ। परंतु तारे का वेग अधिक होने के कारण वह उसके पीछे नहीं जा सका तथा वापस आकर सूर्य के चारों ओर भ्रमण करने लगा। कुछ समय पश्चात् साथी तारा इतना दूर जा चुका था कि सूर्य से कोई दूसरा वायव्य फिलामेन्ट नहीं निकल सका। वायव्य फिलामेन्ट सिगार के आकार का था। कालांतर में इसी के विखण्ड से ग्रहों तथा उपग्रहों की रचना हुई।

जेफ्रीज के संशोधन में सूर्य एवं साथी तारे के अतिरिक्त एक और तारा था जिसे सूर्य का निकटवर्ती तारा कहा गया। साथी तारे का परिभ्रमण कक्ष निकटवर्ती तारे के साथ में था। जेफ्रीज साथी तारे व निकटवर्ती तारे में टक्कर की बात करते हैं। इससे ग्रहों की परिभ्रमण सम्बंधी अनेक कठिनाइयां सुलझ जाती हैं।

रसैल की द्वैतारक परिकल्पना (Binary star hypothesis): यह परिकल्पना भी ज्वारीय सिद्धांत तथा सर जेम्स का अनुसरण करती है। ज्वारीय सिद्धांत की दो प्रमुख समस्याओं—(i) सूर्य व ग्रहों के बीच की दूरी, (ii) ग्रहों का कोणीय आवेग; का निवारण रसैल ने अपने सिद्धांत में करने का प्रयास किया, इसलिए यह सिद्धांत और वैज्ञानिक लगता है।

प्रारंभिक समय में सूर्य के निकट दो तारे थे, जैसा कि जेफ्रीज भी मानते हैं। एक तारा जो सूर्य के काफी समीप था, सूर्य की परिक्रमा कर रहा था तथ दूसरा तारा अति विशाल था जिसकी परिभ्रमण कक्षा उक्त दोनों के निकट तथा समीपवर्ती तारे की विपरीत दिशा में गतिशील था। इन दोनों तारों के बी अनुमानतः 65 लाख किमी. की दूरी रही होगी। इस तरह सूर्य विशाल तो काफी दूर था तथा उसकी आकर्षण शक्ति का प्रभाव सूर्य पर नहीं पड़ा, समीपवर्ती तारे की दूरी कम होने के कारण उस पर ज्वारीय शक्ति का पड़ा तथा कुछ पदार्थ निकल कर विशालकाय तारे की दिशा में परिभ्रमण लगा। कालांतर में इसी पदार्थ पिण्ड से ग्रहों का निर्माण हुआ। प्रारंभ में ग्रह रहे होंगे तथा आपसी आकर्षण के कारण इन्हीं से पदार्थ निकल कर उप होंगे। इस प्रकार रसैल ने ग्रहों की दूरी व कोणीय आवेग की समस्या का निदान दिया है।

WWW.GRADESETTER.COM

WWW.GRADESETTER.COM

आटोस्मिड ने ग्रहों की उत्पत्ति गैस व धूल-कणों से माना है। आरंभिक समय में ब्रह्माण्ड में गैस व धूलि कण अत्यधिक मात्रा में बिखरे हुए थे। गैस-मेघ तथा धूलि कण उल्काओं या तारों से निकलने वाले पदार्थ से माना। प्रारंभ में जब सूर्य आकाश गंगा के निकट से गुजर रहा था, तो अपनी आकर्षण शक्ति के कारण कुछ गैस व धूलि राशि को अपनी ओर आकर्षित कर लिया जो सामूहिक रूप से सूर्य की परिक्रमा करने लगे। कालांतर में ये घनीभूत होकर चपटी तस्तरी में परिणत हो गये। इसी के क्रमिक विकास से ग्रहों का निर्माण हुआ।

उपरोक्त परिकल्पनाओं तथा सिद्धांतों के अलावा अनेक मत तथा सिद्धांत प्रस्तुत किए गए हैं। इनमें अधिकांश मत पुरानी परिकल्पनाओं के संशोधन मात्र हैं। नवीन परिकल्पनाओं में प्रमुख हैं—

1. फॉन वाइसर की परिकल्पना,
2. अल्फवेन की अंतर्तारक मेघ परिकल्पना,
3. रॉसजन की परिभ्रमण एवं ज्वारीय परिकल्पना,
4. ए.सी. बनर्जी की सिफिड परिकल्पना,
5. क्वीयर का आदिम ग्रह सिद्धांत,
6. लैमेण्डर का महाविस्फोटक सिद्धांत
7. ई.एम. ड्रोबीरवेस्की का बृहस्पति सूर्य तारक परिकल्पना,
8. डालन गुथ का स्फीति सिद्धांत, आदि।

उत्पत्ति

पृथ्वी की उत्पत्ति के संदर्भ में अधिक मान्य परिकल्पना के अनुसार लगभग 4 अरब 60 करोड़ वर्ष पूर्व धूल व गैस के विशालकाय बादल से इसकी उत्पत्ति हुई। भंवरदार गति से घूम रहे विशालकाय बादल ने अपने गुरुत्व के प्रभाव में सिकुड़ना आरंभ किया और उसकी आकृति धीरे-धीरे चपटी डिस्क के समान हो गई। जैसे-जैसे इस बादल का आकार छोटा होता गया वैसे-वैसे इसके घूमने की गति बढ़ती गई (कोणीय संवेग संरक्षण नियम)। तीव्र गति से घूमता बादल या नेबुला एक नहीं रह पाया व इसके अनेक खण्ड हो गये। इस प्रकार अनेक खण्डों में विभक्त होने के कारण नेबुला का केंद्र काफी धीरे-धीरे घूमने लगा व अंततः नये तारे, सूर्य के रूप में बदल गये। गैस व धूल के विलग खण्डों से ग्रहों का निर्माण हुआ। प्रत्येक खण्ड के संकुचन से उसका केंद्रीय भाग गर्म होता गया। समय

भूवैज्ञानिक समय मापक्रम

कल्प (ERA)	युग (Epoch)	शक (Period)	अवधि (वर्ष)	प्रारंभ होने का समय (वर्ष पूर्व)
1-नियोजोइक Neozoic	चतुर्थ युग	A-होलोसीन	—	10,000
		B-प्लीस्टोसीन	990,000	1,000,000
2-सेनोजोइक	तृतीय युग	A-प्लायोसीन	10,00,000	11,000,000
		B-मायोसीन	14,000,000	25,000,000
		C-ओलिगोसीन	15,000,000	40,000,000
		D-इयोसीन	30,000,000	70,000,000
3-मेसोजोइक	द्वितीय युग	A-क्रीटैसियस	65,000,000	135,000,00
		B-जुरैसिक	45,000,000	180,000,0(
		C-ट्रियासिक	45,000,000	225,000,0
4-पैल्योजोइक	प्रथम युग	A-पर्मियन	45,000,000	270,000,(
		B-कार्बोफिफरस	80,000,000	350,000
		C-डिवोनियन	50,000,000	400,000
		D-सिलूरियन	40,000,000	440,00
		E-आर्डोविसियन	60,000,000	500,0(
		F-कैम्ब्रियन	100,000,000	600,0
5-प्री-पैल्योजोइक एजोइक		प्री-कैम्ब्रियन या एलगानिकन आर्कियन	—	—

पृथ्वी: तथ्य एक दृष्टि में

आयु लगभग 4½ अरब वर्ष

सूर्य से दूरी: 149,597,870 कि.मी. या 92,750,680 मील पृथ्वी तक सूर्य प्रकाश पहुंचने की अवधि–8 मिनट 18 सेकेंड।

चन्द्रमा से दूरी: 3,84,365 कि.मी.;

वायुमंडल की ऊंचाई–धरातल से 1,600 कि.मी. की ऊंचाई तक। वायुमंडल का 99 प्रतिशत भाग 32 कि.मी. से नीचे की ऊंचाई तक पाया जाता है।

WWW.GRADESETTER.COM

WWW.GRADESETTER.COM

ग्रहण

ग्रहण का अर्थ—किसी खगोलीय पिण्ड के अंधकारमय हो जाने से है जो कि किसी अन्य खगोलीय पिंड के उस खगोलीय पिण्ड के प्रकाश मार्ग में आने के कारण होता है या किसी अन्य खगोलीय पिण्ड की छाया उस खगोलीय पिण्ड पर पड़ने के कारण उत्पन्न होती है।

पृथ्वी व चंद्रमा की गतियों के कारण सूर्य ग्रहण व चंद्र ग्रहण की घटना उत्पन्न होती है। सूर्य ग्रहण तब होता है जब चंद्रमा, पृथ्वी व सूर्य के मध्य से गुजरता है एवं इस कारण सूर्य काला दिखाई देने लगता है। चंद्र ग्रहण तब होता है जब पृथ्वी, चंद्र व सूर्य के मध्य आकर चंद्रमा तक आने वाले सूर्य के प्रकाश को रोक देती है व पृथ्वी की छाया चंद्रमा पर पड़ने से वह काला दिखाई देता है। पृथ्वी व चंद्रमा की तरह अन्य खगोलीय पिण्डों में भी ग्रहण की स्थिति उत्पन्न होती है।

ग्रहण कब होता है

चंद्रमा, पृथ्वी का एक चक्कर लगभग एक माह (29 दिन) में लगाता है और पृथ्वी व चंद्रमा की छायाएं निरंतर ब्रह्माण्ड में अस्तित्वमान रहती हैं। परंतु फिर भी प्रति या चंद्र ग्रहण प्रति माह नहीं होता क्यों? इसका कारण है कि चंद्रमा की कक्षा में पृथ्वी की सूर्य की ओर कक्षा के सापेक्ष 5° का झुकाव है और इसी कारण चंद्रमा की छाया प्रति माह पृथ्वी पर नहीं पड़ती व सूर्य ग्रहण भी प्रति माह नहीं होता। इसी कारण चंद्रमा पर भी पृथ्वी की छाया प्रति माह नहीं पड़ती व चंद्र ग्रहण भी प्रति माह नहीं होता। यही कारण है कि सूर्य या चंद्र ग्रहण तभी होते हैं जबकि सूर्य, पृथ्वी व चंद्रमा एक ही सीधी रेखा में हों।

सूर्य ग्रहण: सूर्य ग्रहण की स्थिति तब होती है जब चंद्रमा की छाया पृथ्वी पर पड़ती है। चंद्रमा की छाया अमूमन पश्चिम से पूर्व की ओर 3200 कि.मी. प्रति घंटे की गति से बढ़ती है। चंद्रमा की छाया वाले प्रदेशों में निवासित व्यक्तियों को पूर्ण, आंशिक या वलय (annular) सूर्यग्रहण दिखाई दे सकता है। पूर्ण सूर्य ग्रहण की स्थिति में चंद्रमा, सूर्य को पूरी तरह ढक लेता है। वलय सूर्य ग्रहण की स्थिति तब होती है जब चंद्रमा, पृथ्वी से दूरस्थ स्थिति (अपसौर) में होता है व चंद्रमा पूरी तरह सूर्य को ढकने का प्रयास करता है परंतु असफल रहता है। पृथ्वी

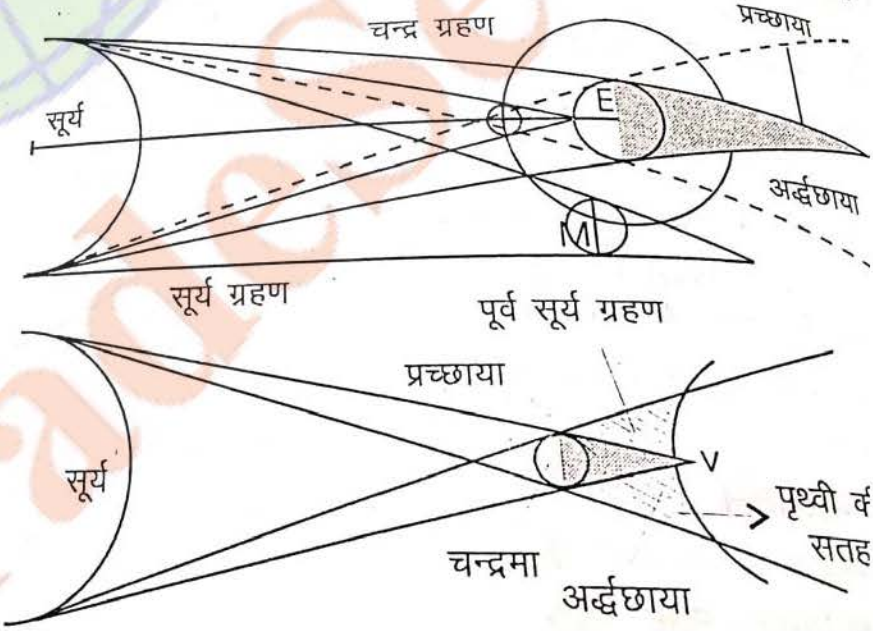

WWW.GRADESETTER.COM

WWW.GRADESETTER.COM

महाद्वीपीय प्रवाह सिद्धांत

सर्वप्रथम महाद्वीपों के प्रवाह की बात 1908 ई. में एफ.बी. टेलर ने की थी, परंतु इसे सिद्धांत रूप देने का श्रेय प्रो. अल्फ्रेड वेगनर (1912) को है। इन्होंने महाद्वीपों व महासागरों के स्थिरता सम्बंधी परिकल्पना को गलत सिद्ध करते हुए प्रवाह के सम्बंध में प्रमाण दिया। इनके सिद्धांत का मूल आधार 'जलवायु कटिबंधों का स्थानांतरण' है। भूमण्डल के अनेक क्षेत्रों में ऐसे प्रमाण मिले हैं, जिनसे यह ज्ञात होता है कि एक ही स्थान पर शीत व शीष्म दोनों प्रकार की जलवायु रही है। इन परिवर्तनों का दो रूप हो सकता है—या तो जलवायु कटिबंध स्थिर हों तथा स्थल प्रवाहित होते रहे हों अथवा स्थल स्थिर हों तथा कटिबंध प्रवाहित होते रहे हों। वेगनर प्रथम तर्क को सही मानते हैं तथा इन्होंने इसके पक्ष में अनेक प्रमाण प्रस्तुत किए।

वेगनर के अनुसार कार्बनीफरस युग में समस्त स्थलखण्ड जुड़े हुए थे, जिसे इन्होंने 'पेन्जिया' कहा। इसके चारों तरफ विशाल जल राशि थी, जिसे 'पेंथलासा' नाम दिया। पेंजिया के उत्तरी भाग को 'अंगारा' व दक्षिणी भाग को 'गोन्डवाना' लैण्ड कहा। इसके तीन आंतरिक भाग थे—सियाल, सीमा और निफे। सियाल सबसे ऊपरी परत थी जो सीमा पर प्रवाहित हो रही थी। कार्बनीफरस युग में दक्षिणी ध्रुव वर्तमान 'डर्बन' के पास था। आगे चलकर पेंजिया का विभंजन हो जाता है तथा विश्व का वर्तमान स्वरूप प्राप्त हुआ। वेगनर ने प्रवाह के लिए गुरुत्व व प्लवन शीलता बल तथा चंद्रमा के ज्वारीय बल को उत्तरदायी ठहराया। एकीकृत पेंजिया को चट्टानों की संरचना, वनस्पति, जीवाश्म, पर्वतक्रम, भौगोलिक एकरूपता आदि तथ्यों से प्रमाणित किया है।

प्रवाह सिद्धांत की विवेचना से पर्वत निर्माण प्रक्रिया, समुद्र द्वीपीय चाप की उत्पत्ति, कार्बोनीफरस हिमानीकरण, ध्रुवों का स्थानांतरण आदि तथ्यों का स्पष्टीकरण संभव हो जाता है।

महासागर

यह स्वाभाविक है कि पृथ्वी को "नीला ग्रह" क्यों कहा जाता है, जैसाकि पृथ का 71 प्रतिशत धरातल जल से आच्छादित है और इस जल का 97 प्रतिः हिस्सा महासागरों में है। महासागर पृथ्वी पर 3 से 4 बिलियन वर्षों के बीच प्र हुए जिसमें से जीवन का प्रस्फुटन हुआ। प्राचीन शैवालिय संरचना आस्ट्रे के समीप जल में पाई गई जिसे स्ट्रोमेटोलाईट्स कहा गया, और इसे वायु में ऑक्सीजन का प्रारंभिक स्रोत समझा गया।

विश्व के पांच बड़े महासागर हैं—प्रशांत महासागर, अन्धमहासाग महासागर, उत्तरी ध्रुव महासागर और दक्षिणी ध्रुव महासागर।

प्रशान्त महासागर अमेरिका और एशिया को पृथक् करता है। का सबसे बड़ा तथा सबसे गहरा महासागर है। इसका क्षेत्रफल 6,3 वर्ग मील, अर्थात् अटलांटिक महासागर के दुगुने से भी अधिक है। यह तट से लेकर पनामा 9,455 मील चौड़ा तथा बेरिंग जलडमरूमध्य से अंटार्कटिका तक 10,492 मील लंबा है। प्रशांत महासागर की औ लगभग 14,000 फुट है तथा अधिकतम गहराई लगभग 35,400 महासागर अटलांटिक महासागर का सहवर्ती है।

अन्ध महासागर या अटलांटिक महासागर उस विशाल ज है जो यूरोप तथा अफ्रीका महाद्वीपों को नई दुनिया के महाद्वीपों है। क्षेत्रफल और विस्तार में दुनिया का दूसरे नंबर का महासाग का 1/5 क्षेत्र घेर रखा है। इस महासागर का नाम ग्रीक संस्कृ है जिसमें इसे नक्शे का समुद्र भी बोला जाता है। इस महासागर अंग्रेजी अक्षर 8 के समान है। लंबाई की अपेक्षा इसकी चौ आर्कटिक सागर, जो बेरिंग जलडमरूमध्य से उत्तरी ध्रुव हो और ग्रीनलैंड तक फैला है, मुख्यतः अंधमहासागर का ही उत्तर में बेरिंग जलडमरूमध्य से लेकर दक्षिण में कोट्सत 12,810 मील है। इसी प्रकार दक्षिण में दक्षिण जार्जिया सागर भी इसी महासागर का अंग है। इसका क्षेत्रफल इस 4,10,81,040 वर्ग मील है। समुद्रों को छोड़कर इसक

...ग्रहण प्रकृति के दर्शनीय दृश्यों में से एक है। चंद्रमा पश्चिम दिशा ...अग्रसर होता है व धीरे-धीरे संपूर्ण सूर्य को ढक लेता है। जब ...पूर्ण ढक लेता है तब काले दिखाई देता सूर्य के चारों ओर ...दिखाई देता है। यह प्रभामण्डल सूर्य का बाह्य वायुमण्डल ...है। आकाश इस स्थिति में नीला-काला दिखाई देता है एवं ...दिन में दिखने लगते हैं। पशु-पक्षियों के व्यवहार में भी परिवर्तन ...यह स्थिति कुछ ही मिनट रहती है इसके पश्चात् सूर्य पुनः ...प्रकाशमय काल अवधि अधिकतम 7 मिनट 40 सेकण्ड हो ...अधिकतम यह अवधि 2½ मिनट होती है।

...ग्रहण उस स्थिति में होता है जब चंद्रमा, पृथ्वी की छाया ...दूसरे शब्दों में जब पृथ्वी, चंद्रमा व सूर्य के प्रकाश मार्ग के बीच ...तक सूर्य किरणें नहीं पहुंचने देती है। पूर्ण चंद्रग्रहण तब होता ...पूरी तरह से पृथ्वी की छाया से ढक जाता है जबकि आंशिक चंद्र ...में चंद्रमा का एक भाग ही पृथ्वी की छाया के अधीन आता है। ...तामान 1 घंटे 40 मिनट तक चलता है। चंद्रग्रहण को रात के समय ...भाग से देखा जा सकता है। चंद्रग्रहण को देखने में कोई खतरा ...अधिकांश चंद्रग्रहणों में चंद्रमा कभी-भी पूर्ण काला नहीं हो पाता। ...यह लाल रंग सा लिये होता है।

...ग्रहणों में अधिकतम 7 ग्रहण (सूर्य ग्रहण एवं चन्द्र ग्रहण को ...वर्ष में अधिकतम 5 बार हो सकते हैं तथा सूर्य ग्रहण की घटना वर्ष में कम-से-कम 2 वार व ...बार हो सकती है। इनमें भी प्रत्येक सूर्य ग्रहण के दिन पूर्ण सूर्य ...होता है।

दिन की अवधि एवं मौसम

...दिन की अवधि या लंबाई आकाश (क्षितिज) में सूर्य के समयावधि द्वारा ...होती है। दिन की अवधि या लंबाई पूरे वर्ष परिवर्तित होती है जैसे-जैसे ...सूर्य के अभिमुख अभिविन्यास में परिवर्तन होता है। **प्रदीप्ति चक्र** एक ...चक्र है जो दिन को रात से पृथक् करता है।

पृथ्वी–सौर संबंध और ऋतु

	शीत	शरद	ग्रीष्म
वसंत विषुव	अयनांत	विषुव	अयनांत
21 मार्च	22 दिसंबर	23 सितंबर	21 जून
0°	$23\frac{1}{2}$°S	0°	$23\frac{1}{2}$°N
उत्तरी व दक्षिणी ध्रुव	आर्कटिक और अंटार्कटिक वृत्त	उत्तरी व दक्षिणी ध्रुव	आर्कटिक और अंटार्कटिक वृत्त
हर स्थान पर 12 घण्टे का दिन		हर स्थान पर 12 घण्टे का दिन	

महाद्वीप एवं महासागर

...ीप

...महाद्वीप पृथ्वी का बहुत बड़ा भाग है जोकि पानी से घिरा हुआ है, ...में ऐसा नहीं है। ये सात महाद्वीप हैं—उत्तरी अमेरिका, दक्षिणी ...प, एशिया, अफ्रीका, आस्ट्रेलिया और अण्टार्कटिका। यदि यूरोप ...जोड़ दिया जाए तो इसे यूरेशिया महाद्वीप कहा जाएगा।

WWW.GRADESETTER.COM

WWW.GRADESETTER.COM

दक्षिण ध्रुवीय महासागर, जिसे दक्षिणी महासागर या अंटार्कटिक महासागर भी कहा जाता है, विश्व के दक्षिण में स्थित एक महासागर है, जिसका विस्तार 60° दक्षिण अक्षांश से दक्षिण में है, और यह संपूर्ण अंटार्कटिक महाद्वीप को घेरे हुए है। यह पांच विशाल महासागरों में से चौथा सबसे बड़ा महासागर है। इस महासागरीय क्षेत्र में उत्तर की ओर बहने वाला ठंडा अंटार्कटिक जल, गर्म उप-अंटार्कटिक जल से मिलता है।

महासागरीय जल की प्रकृति

समुद्री जल जलमंडलीय चक्र में जलापूर्ति का एक भंडार है। समुद्री जल में लगभग सभी प्रायनिक तत्व होते हैं, जिसमें साधारण नमक भी शामिल होता है, जो समस्त ठोस का 78 प्रतिशत होता है। महासागरीय लवणता 32/1000 से 37/ तक होती है। उल्लेखनीय है कि लवणता स्थलखण्ड एवं ध्रुवीय प्रदेशों के होती है (30PPT)। सामुद्रिक लवणता को निर्धारित करने वाले कई हैं। लवणता वहां पर न्यून होती है जहां स्वच्छ जल की नदी सागर है। उत्तरी प्रशांत वर्षा वाले क्षेत्र में वाष्पीकरण तीव्र होता है, इसलिए लवणता कम होती है। उपोष्ण कटिबंधीय महासागरों में जलीय होती है क्योंकि वाष्पीकरण वर्षण की मात्रा में वृद्धि करता है। टलांटिक महासागर में लवणता की मात्रा सर्वाधिक है जबकि में यह सर्वाधिक कम है।

स्थायत् रूप से तीन प्रकार के तापमान क्षेत्र होते हैं: (1) जल क्रमण क्षेत्र, जहां गहराई में वृद्धि के साथ-साथ तापमान (3) गहरे समुद्र का ठंडा जल।

महासागरीय वितल

महासागरीय उच्चावच के अंतर्गत निम्नलिखित अन्य संरचना भी

अंतःसागरीय रिज/कटक: अंतःसागरीय रिज कुछ गौ कि.मी. चौ

अंतःसागरीय रिज भी. लम्बी अंतःसागरीय पर्वतमालाएं हैं। अतः सागरीय

की कुल लंबाई 75000 कि.मी. है। ये पृथ्वी की सबसे बड़ी पर्वतमाला

है। ये रिज या तो पठार की तरह चौरस होते हैं या अल्प ढाल वाले

के रूप में होते हैं। सागरीय रिज व्यवस्था का उद्भव विवर्तनिक

विवर्तनिक संकल्पना को आधार प्रदान करती हैं।

वितलीय पहाड़ी: इनका उद्भव ज्वालामुखी क्रियाओं से हुआ है।

तल से 1000 मीटर ऊंचाई वाली पहाड़ी को समुद्री टीला (seamount)

हैं। ऐसे पहाड़ जिनकी चोटियां समतल होती हैं निमग्न द्वीप (guyot)

हैं। प्रशांत महासागर में समुद्री टीले व निमग्न द्वीपों की संख्या लगभग

है।

अंतःसागरीय खाई/गर्त: ये सागर के सबसे गहरे भाग होते हैं एवं

तल व औसत गहराई से कहीं अधिक गहरे होते हैं। गर्त लम्बा, संकरा

पार्श्व वाला सागरीय तल में हुआ अवनमन (depression) है। गर्त की

सामान्यतः 5500 मीटर होती है। अतः सागरीय गर्त प्रायः तट के

मेखलाओं के सामने प्राप्त हुई है। गर्तों को दो वर्गों में विभाजित किया

पहले वर्ग में ऐसे गर्त रखे गये हैं जिनका क्षेत्रफल कम परंतु गहराई

इन्हें गर्त (deep) कहा गया है। दूसरे वर्ग में उन गर्तों को रखा गया है

लंबाई अधिक है इन्हें खाई (trench) कहा गया है। इनको विवर्तनिक

के परिणामस्वरूप उत्पन्न माना जाता है। प्रशांत महासागर में अत्यधिक

गये हैं। प्रशांत महासागर में विश्व की सबसे गहरी गर्त (11 कि.मी. से

अधिक)—मेरियाना गर्त, गुआम (Guam) द्वीप समूह के पास स्थित है।

अंतःसागरीय केनियन

ये महासागरीय वितल पर गहरे गार्ज हैं जो तीव्र ढालों वाली गहरी घाटियां

हैं। अंतःसागरीय केनियन प्रायः महासागरीय किनारों पर सभी महासागरों में

हैं। केनियन प्रायः महाद्वीपीय ढाल, मग्नतट व उत्थानों पर ही पाये जाते हैं।

अंतःसागरीय केनियन के तीन रूप हैं:

1. छोटे गार्ज महाद्वीपीय मग्नतट से आरंभ होते हैं व महाद्वीपीय ढाल के साथ-साथ चलते हैं। यह अत्यंत गहरी घाटी का निर्माण करते हैं। जैसे न्यू इंग्लैण्ड के समीप स्थित ओशोनोग्राफर केनियन।

2. ऐसे गार्ज जो किसी नदी के मुहाने से आरंभ होकर महाद्वीपीय मग्नतट पर विस्तारित रहते हैं, जैसे—जायरे, मिसीसिपी व सिंधु केनियन।

3. कुछ केनियन ऐसे भी होते हैं जो महासागरीय वितल पर डेल्टा का निर्माण करते हैं या फिर पंखे के आकार के जलोढ़ शंकुओं में समाप्त होते हैं।

तट, शोल व भित्ति

तट, शोल व भित्ति जैसी सागरीय आकृतियों का विकास क्रमशः अपरदन, निक्षेपण या जैविक प्रक्रिया के माध्यम से होता है। ये आकृतियां अन्य सागरीय स्थलाकृतियों पर बनती हैं इसलिए प्रायः ये उभारों के ऊपरी भाग में ही पायी जाती हैं।

तटः तट एक समतलीय उभार होता है जो महाद्वीपीय किनारे पर होता है। जल की गहराई नौसंचालन के लिए पर्याप्त होती है हालांकि गहराई के दृष्टिकोण से ये भाग उथले ही कहे जायेंगे। उत्तरी सागर

WWW.GRADESETTER.COM

WWW.GRADESETTER.COM

जैसे तत्वों के रेडियोएक्टिव अपक्षय द्वारा उत्पन्न उत्पन्न होती है। यह ऊष्मा ऊपर की ओर स्थानांतरित होते हुए मेंटल को गर्म करती है जिसके कारण मेंटल प्लेटों पर ऊपर की ओर बल लगाता है। प्लेटों का विचलन बढ़ाने में दरार एवं कंपन पैदा करता है, और इनकी टक्कर विशाल पर्वत शृंखलाएं तथा ज्वालामुखी क्षेत्र का निर्माण करती है।

महाद्वीपीय उच्चावच

पर्वत: पर्वत धरातल की सर्वप्रमुख भू-आकृतियों में से एक है। धरातल के 27 प्रतिशत भाग पर पर्वतों का विस्तार है। अपनी ऊंचाई के कारण पर्वत आस-पास के क्षेत्रों से स्पष्टतः दृष्टिगोचर होते हैं। इस आधार पर सामान्यतः धरातल से 600 मीटर से अधिक ऊंचे उठे भू-भाग को पर्वत कहते हैं, परन्तु मात्र ऊंचाई ही पर्वत को परिभाषित या निर्धारित करने का आधार नहीं हो सकता है। विश्व के कई पठार, जैसे—तिब्बत का पठार समुद्र तल से 4800 मीटर ऊंचा है किंतु पर्वत नहीं है। अतः पर्वत को समग्र रूप में इस तरह से परिभाषित किया जा सकता है—"पर्वत उस श्रेणी अथवा उच्च स्थान को कहते हैं; जिसकी ढाल तीव्र हो तथा यह अपने निकटवर्ती क्षेत्र से इतना अधिक ऊंचा हो (कम से कम 1500 फीट) कि वह दूर से ही स्पष्ट रूप से दिखाई दे सके तथा उसका शिखर क्षेत्र पठार के विपरीत संकुचित हो।"

पर्वतों के स्वरूप निम्न प्रकार से हैं:

1. पर्वत कटक (mountain ridge): लंबी, संकरी व ऊंची पहाड़ियों का क्रम पर्वत कटक कहलाता है। इसके एक ओर का ढाल अत्यंत तीव्र तथा दूसरी ओर का ढाल मंद होता है। कभी-कभी इसके दोनों ढाल एक समान भी हो सकते हैं। पर्वत कटक का निर्माण चट्टानों के स्तर के मुड़ने से होता है, विशेष रूप से उस स्थान पर जहां स्तर के एक ओर घाटी तथा दूसरी ओर अपेक्षाकृत ऊंचा उठा भाग होता है।

2. पर्वत श्रेणी (mountain range): पहाड़ और पहाड़ियों का विस्तृत क्रम जिसमें अनेक कटक, शिखर व घाटियां सम्मिलित होती हैं, पर्वत श्रेणी कहलाता है। पर्वत श्रेणी एक सीध में संकरी पट्टी या रेखा के रूप में विस्तृत होती है। उल्लेखनीय है कि एक ही पर्वत में कई श्रेणियां हो सकती हैं, जैसे— हिमालय की श्रेणियां। इन श्रेणियों की उत्पत्ति, आकृति तथा बनावट का युग एक ही होता है पर, इनकी रचना अर्थात् चट्टानों की बनावट में अंतर होता है।

3. पर्वत शृंखला या माला (mountain chain): विभिन्न युगों में निर्मित भिन्न-भिन्न प्रकार के लंबे तथा संकरे पर्वतों का विस्तार जब समानांतर रूप में होता है तब, उसे पर्वत शृंखला या पर्वत माला कहते हैं। इन शृंखलाओं के बीच पठार भी स्थित होते हैं। एल्युशियन पर्वतमाला इसका उदाहरण है।

4. पर्वत तंत्र (mountain system): एक ही युग में निर्मित लंबाकार, समानांतर पर्वत श्रेणियों का समूह पर्वत तंत्र कहलाता है। इसमें अनेक एकाकी पर्वत या पर्वत श्रेणियां अथवा दोनों एक साथ पाये जाते हैं। पर्वत श्रेणियां एक-दूसरे के समानांतर होती हैं, जो घाटियों या तलहटियों द्वारा पृथक होती हैं। अप्लेशियन पर्वत समूह को इसका आदर्श उदाहरण माना जा सकता है।

5. पर्वत वर्ग (mountain group): पर्वतों का उच्च स्थल खंड पर्वत व कहलाता है, इसमें पर्वतों का कोई निश्चित क्रम नहीं पाया जाता है। वस्तुतः प वर्ग में कटक तथा श्रेणियां पर्वत माला की तरह विस्तृत होती हैं, लेकिन उ तरह एक सीध में या लंबी रेखा के रूप में विस्तृत नहीं होती हैं। इनका वि असमान होता है तथा इसमें कटक एवं श्रेणियां गोलाकार रूप में पायी जा पर्वत वर्ग को पर्वत समुदाय भी कहा जाता है।

6. पर्वत समूह (cordillera): विभिन्न युगों में अलग-अलग प्रकार रे पर्वत श्रेणियां, पर्वत तंत्र तथा पर्वत शृंखलाएं पर्वत समूह के अंतर्गत दूसरे शब्दों में पर्वत वर्ग का समूह पर्वत समूह या पर्वत प्रदेश कहलाता पर्वत श्रेणियां तथा पर्वत शृंखलाए किसी निश्चित क्रम में विस्तृत न वरन्, इनकी व्यवस्था कई प्रकार की हो सकती है। अतएव, पर्वत शृं समानांतर तो कहीं केंद्रीय गांठ के चारों ओर विस्तृत होती हैं। इनके और पठार भी स्थित होते हैं। उत्तरी अमेरिका के प्रशांत कार्डिले उत्तम उदाहरण माना जाता है।

WWW.GRADESETTER.COM

WWW.GRADESETTER.COM

पर स्थित है। विशालतम महासागर न होते हुए भी इसके अधीन विश्व का सबसे बड़ा जलसंग्रहण क्षेत्र है।

पृथ्वी के उत्तरी गोलार्द्ध में स्थित उत्तरी ध्रुवीय महासागर या आर्कटिक महासागर, जिसका विस्तार अधिकतर आर्कटिक उत्तर ध्रुवीय क्षेत्र में है। विश्व के पांच प्रमुख समुद्री प्रभागों (पांच महासागरों) में से यह सबसे छोटा और उथला महासागर है। अन्तर्राष्ट्रीय जल संगठन (IHO) की राय में एक महासागर है जबकि, कुछ महासागर विद्वानों इसे अन्तर्देशीय समुद्र या केवल आर्कटिक सागर कहते हैं, और इसे अन्य महासागर के भूमध्य सागरों में से एक मानते हैं। लगभग पूरी तरह से यूरेशिया और उत्तरी अमेरिका से घिरा, आर्कटिक महासागर आंशिक रूप से साल भर में समुद्री बर्फ से ढका रहता है (और सर्दियों में लगभग पूर्ण रूप से)। पांच प्रमुख महासागरों में से इसकी औसत लवणता सबसे कम है।

हिन्द महासागर दुनिया का तीसरा सबसे बड़ा समुद्र है, और पृथ्वी की सतह पर उपस्थित पानी का लगभग 20% भाग इसमें समाहित है। उत्तर में यह भारतीय उपमहाद्वीप से, पश्चिम में पूर्व अफ्रीका; पूर्व में हिन्द चीन, सुंदा द्वीप समूह और ऑस्ट्रेलिया, तथा दक्षिण में दक्षिणध्रुवीय महासागर से घिरा है। विश्व में केवल यही एक महासागर है जिसका नाम किसी देश के नाम यानी, हिन्दुस्तान (भारत) के नाम से है। संस्कृत में इसे रत्नाकर अर्थात् रत्न उत्पन्न करने वाला कहते हैं, जबकि प्राचीन हिन्दू ग्रंथों में इसे हिन्दु महासागर कहा गया है।

वैश्विक रूप से परस्पर जुड़े समुद्रों के एक घटक हिंद महासागर को, अंध महासागर से 20° पूर्व देशांतर जो केप एगुलस से गुजरती है, और प्रशांत महासागर से 146°55' पूर्व देशांतर पृथक् करती हैं। हिंद महासागर की उत्तरी सीमा का निर्धारण फारस की खाड़ी में 30° उत्तर अक्षांश द्वारा होता है। हिंद महासागर की पृष्ठ धाराओं का परिसंचरण असममित है। अफ्रीका और ऑस्ट्रेलिया के दक्षिणी सिरों पर इस महासागर की चौड़ाई करीब 10,000 किलोमीटर (6200 मील) है; और इसका क्षेत्रफल 73556000 वर्ग किलोमीटर (28400000 वर्ग मील) है जिसमें लाल सागर और फारस की खाड़ी शामिल हैं।

हिन्द महासागर में स्थित मुख्य द्वीप है; मेडागास्कर जो विश्व का चौथा सबसे बड़ा द्वीप है, रीयूनियन द्वीप; कोमोरोस; सेशेल्स, मालदीव, मॉरिशस, श्रीलंका और इंडोनेशिया का द्वीपसमूह जो इस महासागर की पूर्वी सीमा का निर्धारण करते हैं।

दक्षिण ध्रुवीय महासागर, जिसे दक्षिणी महासागर या अंटार्कटिक महासागर भी कहा जाता है, विश्व के दक्षिण में स्थित एक महासागर है, जिसका विस्तार 60° दक्षिण अक्षांश से दक्षिण में है, और यह संपूर्ण अंटार्कटिक महाद्वीप को घेरे हुए है। यह पांच विशाल महासागरों में से चौथा सबसे बड़ा महासागर है। इस महासागरीय क्षेत्र में उत्तर की ओर बहने वाला ठंडा अंटार्कटिक जल, गर्म उप-अंटार्कटिक जल से मिलता है।

महासागरीय जल की प्रकृति

ृद्री जल जलमंडलीय चक्र में जलापूर्ति का एक भंडार है। समुद्री जल में लगभग ासायनिक तत्व होते हैं, जिसमें साधारण नमक भी शामिल होता है, जो समस्त येत ठोस का 78 प्रतिशत होता है। महासागरीय लवणता 32/1000 से 37/ तक होती है। उल्लेखनीय है कि लवणता स्थलखण्ड एवं ध्रुवीय प्रदेशों के म होती है (30PPT)। सामुद्रिक लवणता को निर्धारित करने वाले कई ते हैं। लवणता वहां पर न्यून होती है जहां स्वच्छ जल की नदी सागर ती है। उत्तरी प्रशांत वर्षा वाले क्षेत्र में वाष्पीकरण तीव्र होता है, इसलिए में लवणता कम होती है। उपोष्ण कटिबंधीय महासागरों में जलीय क होती है क्योंकि वाष्पीकरण वर्षण की मात्रा में वृद्धि करता है। अटलांटिक महासागर में लवणता की मात्रा सर्वाधिक है जबकि गर में यह सर्वाधिक कम है।

में लम्बवत् रूप से तीन प्रकार के तापमान क्षेत्र होते हैं: (1) जल २) संक्रमण क्षेत्र, जहां गहराई में वृद्धि के साथ-साथ तापमान है, (3) गहरे समुद्र का ठंडा जल।

संक्रमण क्षेत्र, जिसे थर्मोक्लाइन के नाम से जाना जाता है, वैसे महासागर है जहां धरातलीय जल सर्वाधिक गर्म होता है। ध्रुवीय जल क्षेत्र में संक्रमण क्षेत्र नहीं होता क्योंकि धरातलीय जल का तापमान केवल ठंडा होता है।

महासागरीय नितल

नितल मैदान (Abyssal Plain): 3000-6000 मीटर गहराई पर महासागरीय उत्थान के पश्चात नितल मैदान आरंभ होता है जो कि वास्तव में सागर नितल मैदान कुल महासागरीय क्षेत्र के 40 प्रतिशत भाग में है। ये समुद्र प्रमुख महासागरों व अनेक समुद्रों में पाये जाते हैं। ये 1 : 100 प्रवणता वाले समतल मैदान हैं।

महासागरीय उच्चावच के अंतर्गत निम्नलिखित अन्य संरचना भी महासागरों में पायी जाती हैं:

अंतःसागरीय रिज/कटक: अंतःसागरीय रिज कुछ सौ कि.मी. चौड़ी सैकड़ों/हजारों कि.मी. लम्बी अंतःसागरीय पर्वतमालाएं हैं। अतः सागरीय रिज की कुल लंबाई 75000 कि.मी. है। ये पृथ्वी की सबसे बड़ी पर्वतमाला व्यवस्था है। ये रिज या तो पठार की तरह चौरस होते हैं या अल्प ढाल वाले संकरे पर्वत के रूप में होते हैं। सागरीय रिज व्यवस्था का उद्भव विवर्तनिक है व ये प्लेट विवर्तनिक संकल्पना को आधार प्रदान करती हैं।

वितलीय पहाड़ी: इनका उद्भव ज्वालामुखी क्रियाओं से हुआ है। सागरीय तल से 1000 मीटर ऊंचाई वाली पहाड़ी को समुद्री टीला (seamount) कहते हैं। ऐसे पहाड़ जिनकी चोटियां समतल होती हैं निमग्न द्वीप (guyot) कहलाते हैं। प्रशांत महासागर में समुद्री टीले व निमग्न द्वीपों की संख्या लगभग 10,000 है।

अंतःसागरीय खाई/गर्त: ये सागर के सबसे गहरे भाग होते हैं एवं सागरीय तल व औसत गहराई से कहीं अधिक गहरे होते हैं। गर्त लम्बा, संकरा व तीव्र पार्श्व वाला सागरीय तल में हुआ अवनमन (depression) है। गर्त की गहराई सामान्यतः 5500 मीटर होती है। अतः सागरीय गर्त प्रायः तट के सहारे पर्वतीय मेखलाओं के सामने प्राप्त हुई है। गर्तों को दो वर्गों में विभाजित किया गया है। पहले वर्ग में ऐसे गर्त रखे गये हैं जिनका क्षेत्रफल कम परंतु गहराई अधिक है इन्हें गर्त (deep) कहा गया है। दूसरे वर्ग में उन गर्तों को रखा गया है जिनकी लंबाई अधिक है इन्हें खाई (trench) कहा गया है। इनको विवर्तनिक प्रक्रिया के परिणामस्वरूप उत्पन्न माना जाता है। प्रशांत महासागर में अत्यधिक गर्त पाये गये हैं। प्रशांत महासागर में विश्व की सबसे गहरी गर्त (11 कि.मी. से भी अधिक)—मेरियाना गर्त, गुआम (Guam) द्वीप समूह के पास स्थित है।

अंतःसागरीय केनियन

ये महासागरीय वितल पर गहरे गार्ज हैं जो तीव्र ढालों वाली गहरी घाटियां होती हैं। अंतःसागरीय केनियन प्रायः महासागरीय किनारों पर सभी महासागरों में मिलते हैं। केनियन प्रायः महाद्वीपीय ढाल, मग्नतट व उत्थानों पर ही पाये जाते हैं।

अंतःसागरीय केनियन के तीन रूप हैं:

1. छोटे गार्ज महाद्वीपीय मग्नतट से आरंभ होते हैं व महाद्वीपीय ढाल के साथ-साथ चलते हैं। यह अत्यंत गहरी घाटी का निर्माण करते हैं। जैसे न्यूयार्क के समीप स्थित ओशोनोग्राफर केनियन।

2. ऐसे गार्ज जो किसी नदी के मुहाने से आरंभ होकर महाद्वीपीय ढाल पर विस्तारित रहते हैं, जैसे—जायरे, मिसीसिपी व सिंधु केनियन।

3. कुछ केनियन ऐसे भी होते हैं जो महासागरीय वितल पर डेल्टा का निर्माण करते हैं या फिर पंखे के आकार के जलोढ़ शंकुओं में समाप्त होते हैं।

तट, शोल व भित्ति

तट, शोल व भित्ति जैसी सागरीय आकृतियों का विकास क्रमशः अप या जैविक प्रक्रिया के माध्यम से होता है। ये आकृतियां अन्य साग पर बनती हैं इसलिए प्रायः ये उभारों के ऊपरी भाग में ही पा

तटः तट एक समतलीय उभार होता है जो महाद्वीपीय किन होता है। जल की गहराई नौसंचालन के लिए पर्याप्त होती है गहराई के दृष्टिकोण से ये भाग उथले ही कहे जायेंगे। उत्तरी

WWW.GRADESETTER.COM

WWW.GRADESETTER.COM

जैसे तत्वों के रेडियोएक्टिव अपक्षय द्वारा ऊष्मा उत्पन्न होती है। यह ऊष्मा ऊपर की ओर स्थानांतरित होते हुए मेंटल को गर्म करती है जिसके कारण मेंटल प्लेटों पर ऊपर की ओर बल लगाता है। प्लेटों का विचलन चट्टानों में दरार एवं वलन पैदा करता है, और इनकी टक्कर विशाल पर्वत श्रृंखलाएं तथा ज्वालामुखी शंकु को निर्मित करती हैं।

महाद्वीपीय उच्चावच

पर्वतः पर्वत धरातल की सर्वप्रमुख भू-आकृतियों में से एक है। धरातल के 27 प्रतिशत भाग पर पर्वतों का विस्तार है। अपनी ऊंचाई के कारण पर्वत आस-पास के क्षेत्रों से स्पष्टतः दृष्टिगोचर होते हैं। इस आधार पर सामान्यतः धरातल से 600 मीटर से अधिक ऊंचे उठे भू-भाग को पर्वत कहते हैं, परंतु मात्र ऊंचाई ही पर्वत को परिमाणित या निर्धारित करने का आधार नहीं हो सकता है। विश्व के कई पठार, जैसे—तिब्बत का पठार समुद्र तल से 4800 मीटर ऊंचा है किंतु पर्वत नहीं है। अतः पर्वत को समग्र रूप में इस तरह से परिभाषित किया जा सकता है—"पर्वत उस श्रेणी अथवा उच्च स्थान को कहते हैं; जिसकी ढाल तीव्र हो तथा वह अपने निकटवर्ती क्षेत्र से इतना अधिक ऊंचा हो (कम से कम 1500 फीट) कि वह दूर से ही स्पष्ट रूप से दिखाई दे सके तथा उसका शिखर क्षेत्र पठार के विपरीत संकुचित हो।"

पर्वतों के स्वरूप निम्न प्रकार से हैं:

1. ***पर्वत कटक*** *(mountain ridge):* लंबी, संकरी व ऊंची पहाड़ियों का क्रम पर्वत कटक कहलाता है। इसके एक ओर का ढाल अत्यंत तीव्र तथा दूसरी ओर का ढाल मंद होता है। कभी-कभी इसके दोनों ढाल एक समान भी हो सकते हैं। पर्वत कटक का निर्माण चट्टानों के स्तर के मुड़ने से होता है, विशेष रूप से उस स्थान पर जहां स्तर के एक ओर घाटी तथा दूसरी ओर अपेक्षाकृत ऊंचा उठा भाग होता है।

2. ***पर्वत श्रेणी*** *(mountain range):* पहाड़ और पहाड़ियों का विस्तृत क्रम जिसमें अनेक कटक, शिखर व घाटियां सम्मिलित होती हैं, पर्वत श्रेणी कहलाता है। पर्वत श्रेणी एक सीध में संकरी पट्टी या रेखा के रूप में विस्तृत होती है। उल्लेखनीय है कि एक ही पर्वत में कई श्रेणियां हो सकती हैं, जैसे— हिमालय की श्रेणियां। इन श्रेणियों की उत्पत्ति, आकृति तथा बनावट का युग एक ही होता है पर, इनकी रचना अर्थात् चट्टानों की बनावट में अंतर होता है।

3. ***पर्वत श्रृंखला या माला*** *(mountain chain):* विभिन्न युगों में निर्मित भिन्न-भिन्न प्रकार के लंबे तथा संकरे पर्वतों का विस्तार जब समानांतर रूप में होता है तब, उसे पर्वत श्रृंखला या पर्वत माला कहते हैं। इन श्रृंखलाओं के बीच पठार भी स्थित होते हैं। एल्युशियन पर्वतमाला इसका उदाहरण है।

4. ***पर्वत तंत्र*** *(mountain system):* एक ही युग में निर्मित लंबाकार, समानांतर पर्वत श्रेणियों का समूह पर्वत तंत्र कहलाता है। इसमें अनेक एकाकी पर्वत या पर्वत श्रेणियां अथवा दोनों एक साथ पाये जाते हैं। पर्वत श्रेणियां एक-दूसरे के समांनांतर होती हैं, जो घाटियों या तलहटियों द्वारा पृथक होती हैं। अप्लेशियन पर्वत समूह को इसका आदर्श उदाहरण माना जा सकता है।

5. ***पर्वत वर्ग*** *(mountain group):* पर्वतों का उच्च स्थल खंड पर्वत वर्ग कहलाता है, इसमें पर्वतों का कोई निश्चित क्रम नहीं पाया जाता है। वस्तुतः पर्वत वर्ग में कटक तथा श्रेणियां पर्वत माला की तरह विस्तृत होती हैं, लेकिन उनकी तरह एक सीध में या लंबी रेखा के रूप में विस्तृत नहीं होती हैं। इनका विस्तार असमान होता है तथा इसमें कटक एवं श्रेणियां गोलाकार रूप में पायी जाती हैं। पर्वत वर्ग को पर्वत समुदाय भी कहा जाता है।

6. ***पर्वत समूह*** *(cordillera):* विभिन्न युगों में अलग-अलग प्रकार से निर्मित पर्वत श्रेणियां, पर्वत तंत्र तथा पर्वत श्रृंखलाएं पर्वत समूह के अंतर्गत आती हैं। दूसरे शब्दों में पर्वत वर्ग का समूह पर्वत समूह या पर्वत प्रदेश कहलाता है। इसमें पर्वत श्रेणियां तथा पर्वत श्रृंखलाए किसी निश्चित क्रम में विस्तृत नहीं होते हैं, वरन्, इनकी व्यवस्था कई प्रकार की हो सकती है। अतएव, पर्वत श्रृंखलाएं कहीं समानांतर तो कहीं केंद्रीय गांठ के चारों ओर विस्तृत होती हैं। इनके बीच घाटियां और पठार भी स्थित होते हैं। उत्तरी अमेरिका के प्रशांत कार्डिलेरा को इसका उत्तम उदाहरण माना जाता है।

WWW.GRADESETTER.COM

WWW.GRADESETTER.COM

7. पर्वत शिखर (mountain peak): किसी पहाड़ी या पर्वत का सर्वोच्च भाग पर्वत शिखर कहलाता है। पर्वत शिखर नुकीला, गुम्बदाकार, पिरामिड आकार का, मुर्दे की तरह नुकीला होता है। यह पर्वत श्रेणी के अन्य सभी भागों से अधिक ऊंचा होता है, उदाहरणार्थ—हिमालय का एवरेस्ट, कंचनजंघा या आल्प्स का माउंट ब्लैंक इत्यादि।

पर्वतों का वर्गीकरण

पृथ्वी पर उपस्थित पर्वतों में पर्याप्त असमानताएं दृष्टिगत होती है। इन असमानताओं के कई आधार होते हैं। अतः इन्हीं आधारों को ध्यान में रखते हुए पर्वतों का वर्गीकरण किया गया है। पर्वत के वर्गीकरण के आधार हैं—ऊंचाई, स्थिति, निर्माण प्रक्रिया, निर्माणकारी घटना, इत्यादि।

I. ऊंचाई के आधार पर—भू-पृष्ठ पर 600 मीटर से लेकर 8848 मीटर तक ऊंचे पर्वत शिखर मिलते हैं। अतः ऊंचाई के आधार पर पर्वतों को चार वर्ग में रखा गया है, जो निम्न हैं—

निम्न पर्वत (low mountain): समुद्रतल से 700 से लेकर 1000 मीटर तक ऊंचे पर्वत निम्न पर्वत कहलाते हैं। विश्व के प्राचीन पर्वत निम्न पर्वत की श्रेणी में आते हैं। इन प्राचीन पर्वतों की ऊंचाई अनाच्छादन व अपरदन के कारण कम हो गयी है। विंध्याचल, सतपुड़ा इत्यादि निम्न पर्वत के उदाहरण हैं।

रूक्ष पर्वत (rough mountain): 1000 से 1500 मीटर तक की ऊंचाई वाले पर्वत रूक्ष पर्वत कहलाते हैं।

नतोन्नत पर्वत (rugged mountain): 1500 से 2000 मीटर तक की ऊंचाई वाले पर्वत नतोन्नत पर्वत कहलाते हैं। अरावली, पश्चिमी घाट, अप्लेशियन इत्यादि नतोन्नत पर्वत के उदाहरण हैं।

ऊंचे पर्वत (high or sierran mountain): 2000 मीटर या इससे अधिक की ऊंचाई वाले पर्वत ऊंचे पर्वत कहलाते हैं। ऊंचे पर्वतों के अंतर्गत ऊंचे, अधिक ऊंचे, अत्यधिक ऊंचे तथा सबसे ऊंचे क्रम में पुनः इनका उप-वर्गीकरण किया गया है। इस श्रेणी में रॉकी, एण्डीज, आल्प्स तथा हिमालय को रखा जाता है।

II. स्थिति के आधार पर: पर्वतों का विस्तार पृथ्वी पर सिर्फ स्थलीय भागों में ही नहीं है, वरन् सागरीय क्षेत्र में भी है। अतः इस आधार पर पर्वतों को दो भाग में बांटा गया है—

स्थल स्थित पर्वत (continental mountains): विश्व के अधिकतर पर्वतों का विस्तार स्थल भाग पर ही है। साथ ही विश्व के सर्वोच्च पर्वतों की प्राप्ति भी स्थलीय भाग पर ही होती है। रॉकी, एण्डीज, आल्प्स, हिमालय इत्यादि ऐसे ही पर्वत हैं। स्थल स्थित पर्वतों को दो भागों में बांटा जाता है—

(क) तटीय पर्वत: तटीय पर्वत महासागरों के समानांतर महाद्वीपों के किनारे विस्तृत होते हैं। इनकी दिशा पश्चिम से पूर्व या उत्तर से दक्षिण होती है। भारत के पूर्वी व पश्चिमी सागरीय तट के सहारे पूर्वी घाट पहाड़ तथा पश्चिमी घाट पहाड़ का विस्तार, उत्तरी अमेरिका में रॉकी तथा दक्षिणी अमेरिका में एण्डीज, अफ्रीका के उत्तरी-पश्चिमी किनारे पर एटलस पर्वत, यूरोप के दक्षिणी किनारे पर अल्पाइन पर्वत समूह का विस्तार तटीय पर्वतों के उदाहरण को प्रस्तुत करता है।

(ख) आंतरिक पर्वत: ये आंतरिक महाद्वीपों के आंतरिक भाग में सागरीय तट से दूर स्थित होते हैं। इनका निर्माण अनुमानतः भू-सन्नतियों से माना जाता है। यूराल, वासजेज, ब्लैक फारेस्ट, हिमालय, कुनलुन, त्यानशान शिंगलिंगशान, अल्टाई इत्यादि आंतरिक पर्वत के उदाहरण हैं।

सागर स्थित पर्वत (oceanic mountains) कुछ पर्वतों का विस्तार गर-द्रोणियों तथा महाद्वीपीय निमग्न तटों पर भी पाया जाता है। इन्हें सागर न पर्वत कहते हैं।*ऐसे पर्वत अधिकतम समुद्र तल के जल से नीचे ही विस्तृत तु कुछ पर्वत जल से ऊपर भी विद्यमान हैं। सागर स्थित पर्वत मुख्य रूप नामुखी शंकु या लावा निक्षेप निर्मित पर्वत हैं। दृष्टव्य है कि यदि सागर र्तों की ऊंचाई का निर्धारण यदि उनके आधार तल से किया जाय न तल से, तो ये, महाद्वीपीय सर्वोच्च शिखर के समकक्ष या उससे ऊंचे ने हैं। उदाहरणस्वरूप हवाई द्वीप का 'मौना की' पर्वत सागर तल से ऊंचा है जबकि, आधार या सागरीय वितल से 9140 मीटर ऊंचा (8848 मीटर) से भी ऊंचा है। एण्टीलियन पर्वत समूह भी सागरीय

आधार से 8400 मीटर ऊंचा है जबकि, समुद्रतल से इसकी ऊंचाई मात्र ... मीटर ही है।

III. निर्माण प्रक्रिया के आधार पर: पर्वतों के निर्माण में विभिन्न अलग-अलग शक्तियों और प्रक्रियाओं का योगदान होता है। इनमें भ्रंशन, संपीडन बल, खिंचाव बल, ज्वालामुखी उद्गार तथा उससे विमुक्त होने वाले निक्षेप, अपरदन प्रभाव, उन्मज्जन या स्थल का उभार इत्यादि प्रक्रियाओं का योग होता है। इस आधार पर पर्वतों का विभाजन किया गया है—

(A) मौलिक पर्वत (B) अवशिष्ट या वर्पित पर्वत।

(A) मौलिक पर्वत (original or tectonic mountains): मौलिक पर्वत को विवर्तनिक पर्वत भी कहा जाता है, क्योंकि इनका निर्माण विवर्तनिक, जैसे—दबाव, तनाव, संपीडन और उभार इत्यादि के कारण होता है। मौलिक के चार प्रकार हैं—

1. वलित या मोड़दार पर्वत (folded mountain): संपीडन या दबाव शक्ति के कारण चट्टानों के स्तर में व्यापक स्तर पर मोड़ या वलन का रूप ले लेना हो जाता है। वलन विकसित होकर मोड़दार या वलित पर्वत का रूप ले लेते हैं। मोड़दार पर्वत पृथ्वी के प्रमुख पर्वत हैं। संसार के प्रमुख पर्वत वलित पर्वत की श्रेणी में ही आते हैं। ये सर्वाधिक विस्तृत हैं। संसार के प्रमुख पर्वत वलित पर्वत की श्रेणी में ही आते हैं जैसे—हिमालय, रॉकी, एण्डीज, एटलस इत्यादि। मोड़दार पर्वतों में कई भाग में अपनतियां तथा अभिनतियां प्राप्त होती हैं। वलन के आधार पर मोड़दार पर्वत दो प्रकार के होते हैं—

(i) साधारण मोड़दार पर्वत (simple folded mountain): दबाव शक्ति के सामान्य होने पर व्यवस्थित अपनति और अभिनति वाले वलित पर्वत का निर्माण होता है। जिसमें वलन साधारण तथा क्रमिक रूप से होते हैं। ऐसे वलित पर्वत को साधारण मोड़दार पर्वत कहते हैं।

(ii) जटिल मोड़दार पर्वत (complex folded mountain): दबाव शक्ति या संपीडन बल की अत्यधिक तीव्रता से जटिल मोड़दार पर्वत का निर्माण होता है। इसमें वलन का अगला भाग टूटकर दूसरे वलन पर चला जाता है, इसे में ग्रीवा खंड और परिवलन मोड़ इत्यादि का निर्माण होता है।

आयु के आधार पर मोड़दार पर्वत दो प्रकार के होते हैं—

(a) प्राचीन मोड़दार पर्वत (old folded mountain): प्राचीन मोड़दार पर्वतों का निर्माण टर्शियरी युग के पूर्व भूगर्भिक इतिहास के युगों में हुआ था। इसके अंतर्गत कैम्ब्रियन पूर्व कैलिडोनियन तथा हर्सीनियन पर्वत भी आते हैं। वर्तमान में ऐसे पर्वत अपनी मौलिक एवं वास्तविक स्थिति में नहीं रह गये हैं। अनाच्छादन के अनवरत प्रभाव के कारण ये समप्राय मैदान में परिवर्तित हो गये हैं, साथ ही स्थलीय उत्थान के कारण इनमें जटिलताएं भी आ गयी हैं। प्राचीन मोड़दार पर्वत के अंतर्गत अप्लेशियन, स्काटलैण्ड पर्वत, यूराल, अरावली पर्वत, विंध्याचल इत्यादि को रखा जाता है।

(b) नवीन मोड़दार पर्वत (young folded mountain): इसके अंतर्गत टर्शियरी युग के अल्पाइन पर्वतों को सम्मिलित किया जाता है। इन पर्वतों में वर्तमान में भी उत्थान प्रक्रिया जारी है। नवीन मोड़दार पर्वतों में वलन संबंधी जटिलता व्यापक स्तर पर पायी जाती हैं। ऐसे पर्वत मौलिक अवस्था में है। इनमें उच्च शिखर, विस्तृत कटक, पर्वत वर्ग, पर्वत समूह, पर्वत तंत्र, पर्वत श्रेणी, पर्वत संधि तथा लंबी-लंबी घाटियां पायी जाती हैं। इन पर्वतों में चट्टानों का वलन अत्यधिक जटिल तथा कायांतरित होता है साथ ही अत्यधिक ऊंचाई के कारण ये हिमाच्छादित रहते हैं। नवीन मोड़दार पर्वतों की विशिष्टता हिमनद तथा अपरदन व निक्षेपण से बनी आकृतियां हैं।

2. ब्लाक या अवरोधी पर्वत (block mountain): ब्लाक पर्वतों का तनाव तथा खिंचाव शक्ति के कारण होती है। तनाव बल के कारण भ्रंश व दरारों का विकास हो जाता है। इसके कारण स्थलखंड स्थानांत है, अथवा उसका कुछ भाग धंस जाता है तथा कुछ उठ जाता है। अ धंसे हुए भाग के बीच ऊंचा उठा भाग भ्रंशोत्थ पर्वत कहलाता है। का ऊपरी भाग सपाट होता है तथा दोनों ओर की ढाल तीव्र या

WWW.GRADESETTER.COM

WWW.GRADESETTER.COM

...के मध्य धंसा हुआ भू-भाग भ्रंश घाटी कहलाता है। ...दो समान्तर दरारों के बीच स्थित होते हैं। भ्रंशोत्थ पर्वतों ...पर्वत में दो या दो से अधिक भ्रंश प्रणालियां हैं, जिसमें सियरा, सिएरा नेवादा तथा ब्लैक फॉरेस्ट, संयुक्त राज्य अमेरिका का वासाच ...का आदर्श उदाहरण है। पाकिस्तान स्थित ...अन्य महत्वपूर्ण ब्लाक पर्वत हैं।

...(dome mountain): धरातल पर चापाकार रूप में ...पर्वत कहलाता है। जब इस उभार की ऊंचाई कम होती है तब ...पर्वत होती है। इनकी रचना ज्वालामुखी क्रिया ...मैदान की रचना होती है। गुम्बदाकार पर्वतों के आकार में पर्याप्त ...कारण होती है। यह कुछ सौ मीटर से लेकर कई किलोमीटर तक विस्तृत ...है। यह संयुक्त राज्य अमेरिका का सिनसिनाती उभार ...है कि संयुक्त राज्य अमेरिका का विपरीत बिगहार्न्स और ब्लैक हिल्स ...है, जबकि इसके विपरीत बिगहार्न्स और ब्लैक हिल्स ...गुम्बद है। इन पर्वतों की विकास अवस्था के आधार पर इन्हें तीन ...गुम्बद है, जैसे—युवा, परिपक्व तथा जीर्ण या घर्षित गुम्बदाकार ...गया है। चट्टान संरचना तथा निर्माण प्रक्रिया के आधार ...गुम्बद' कहते हैं। चट्टान संरचना तथा निर्माण प्रक्रिया के आधार ...प्रकार के होते हैं—(i) साधारण गुम्बद (ii) ज्वालामुखी ...गुम्बद।

...(mountain of accumulation): संग्रहीत पर्वतों का ...पर्वत (mountain of accumulation): संग्रहीत पर्वतों का ...से निःसृत पदार्थों के जमाव से होता है। ज्वालामुखी विस्फोट ...लावा इत्यादि के लगातार निक्षेप से छोटे-छोटे शंकुओं और ...होता है। कालांतर में इनके आकार बढ़ने लगते हैं जिससे संग्रहीत ...पर्वत भी कहा जाता है। मिश्रित ...ज्वालामुखी पर्वत विश्व के सर्वाधिक ऊंचे, विस्तृत तथा सुडौल ...पर्वत होते हैं। ऐसे पर्वतों के उदाहरण के रूप में संयुक्त राज्य अमेरिका ...फिलीपींस के मैयान तथा जापान के फ्यूजीजामा इत्यादि का नाम ...इसके अतिरिक्त मेक्सिको का पोपोकैटेपेटल, केलिफोर्निया ...का विसूवियस, चिली का एकानागुआ तथा इक्वेडोर का ...ज्वालामुखी पर्वत हैं। कोटापैक्सी (5,983 मीटर) विश्व ...महत्वपूर्ण ज्वालामुखी है।

...ऊंचा जाग्रत ज्वालामुखी पर्वत (residual or circum-erosional ...वशिष्ट या घर्षित पर्वत उन पूर्व निर्मित पर्वतों को कहते हैं जो अपरदन ...अवशिष्ट पर्वत के कारण अपने प्रारंभिक स्वरूप खो चुके होते हैं। इन शक्तियों ...शील रहने के कारण ऊंचे-ऊंचे पर्वत कटकर या घिसकर अवशेष ...ते हैं। अत्यधिक अपरदन के कारण इन्हें घर्षित पर्वत भी कहा ...अत्यधिक ऊंचे वलित या अन्य पर्वत नदी, हिमनद, वायु, तुषार ...कारण घिसकर या कटकर निम्न या अवशिष्ट पर्वत का रूप ...भारत में विंध्याचल, अरावली, सतपुड़ा, महादेव, पश्चिमी घाट, ...ही पर्वत हैं।

...णकारी घटना के आधार पर: पर्वतों के भूवैज्ञानिक इतिहास ...कर्ष निकाला गया है कि पर्वतों की रचना विभिन्न कालों ...क्रिया या पर्वतीकरण क्रिया (orogenesis) कुछ विशेष ...युगों में ही संपन्न हुई है। पर्वत निर्माण क्रिया के क्रम ...र पर्वत उत्पन्न हुए। भू-वैज्ञानिकों के अनुसार धरातल ...टनाएं घटित हुई हैं। अतः इस आधार पर चार प्रकार

...पर्वतः कैम्ब्रियन से पूर्व के पर्वतों के बारे में पर्याप्त ...इनका विस्तार व वितरण प्राचीन दृढ़ भूखंडों के साथ ...मिलता है। इस युग के बाद के पर्वत सेज संकरी पट्टी में पाए होते हैं, जबकि ...इसके पहले के पर्वत विस्तृत क्षेत्रों पर पाए होते हैं। इन पर्वतों की उत्पत्ति तथा ...वितरण विवादग्रस्त है। अमेरिका के भू-वैज्ञानिकों के अनुसार उत्तरी अमेरिका में ...महान ढाल के चारों ओर कैम्ब्रियन पूर्व युग में तीन मुख्य पर्वतीकरण हुए हैं जो ...निम्नांकित हैं—(i) लारेंशियन पर्वतः इस क्रम के पर्वतों के घिसने के बाद उस ...स्थान पर नयी भू-सन्नतियां उत्पन्न हुईं। (ii) एलगोमन पर्वतः इनका निर्माण ...लारेंशियन पर्वतों के स्थान पर निर्मित भू-सन्नतियों के बाद निर्मित तृतीय भूसन्नति में. ...किलार्नियन पर्वतः एलगोमन पर्वतीकरण के बाद निर्मित तृतीय भूसन्नति में. ...किलार्नियन पर्वतों की उत्पत्ति हुई।

कैम्ब्रियन पूर्व के पर्वतों के उदाहरण के रूप में यूरोप के स्कैन्डिनेवियन और ब्रिटेन के ग्रेंपियन पर्वत को लिया जा सकता है।

2. कैलिडोनियन पर्वतः कैलिडोनियन पर्वतों का निर्माण पेल्योजोइक कल्प के सिलूरियन व डेवोनियन युगों में हुआ। इन पर अपरदन के कई चक्रों का प्रभाव पड़ा है फलतः ये अत्यधिक घिस चुके हैं। यूरोप में स्कॉटलैंड, आयरलैंड और स्कैन्डिनेविया के पर्वत, उत्तरी अमेरिका में अप्लेशियन, दक्षिण अमेरिका के ब्राजीलाइड्स, भारत में अरावली, महादेव तथा सतपुड़ा इसी क्रम के पर्वत हैं।

3. हर्सीनियन पर्वतः हर्सीनियन पर्वतों की उत्पत्ति लगभग 27 करोड़ वर्ष पूर्व पर्मियन युग में तृतीय पर्वतीकरण के फलस्वरूप हुई। इनका नामकरण जर्मनी के हार्ज पर्वत के आधार पर हर्सीनियन रखा गया। इस क्रम के पर्वत उत्तरी अमेरिका में अप्लेशियन के रूप में तथा यूरोप में बड़े पैमाने पर विकसित हुए। उल्लेखनीय है कि कैलिडोनियन पर्वतीकरण के बाद कार्बोनिफेरस युग तक शांत काल रहा। भूवैज्ञानिक इतिहास में कार्बोनिफेरस युग 'कोयला युग' के नाम से जाना जाता है। स्वेस ने यूरोप के हर्सीनियन पर्वतों को दो भाग में बांटा है—(i) आर्मेरिकन पर्वतः ब्रिटिश द्वीप तथा पश्चिमी फ्रांस में विस्तृत। (ii) वारिस्कन पर्वतः यूरोप के शेष भाग तथा एशिया में अल्टाई, थ्यानशान, रिवगन इत्यादि पर्वतों के रूप में विस्तृत।

4. अल्पाइन पर्वतः हर्सीनियन पर्वतीकरण के पश्चात् पुनः एक शांत काल का प्रसार था। इसके बाद चतुर्थ पर्वतीकरण के रूप में टर्शियरी युग में अल्पाइन पर्वतों का निर्माण हुआ। वस्तुतः टर्शियरी युग के पूर्व ही मेसोजोइक महाकल्प के अंत में अल्पाइन पर्वतों का निर्माण आरंभ हो गया था। इस पर्वतीकरण की अवधि काफी लंबी थी, जो इयोसीन, ओलिगोसीन, प्लायोसीन तक अनवरत जारी रही। विश्व के सबसे विस्तृत वलित पर्वतों का निर्माण इसी युग में हुआ। हिमालय, रॉकी, एण्डीज, एटलस, आल्प्स इत्यादि इसी क्रम में निर्मित पर्वत हैं। निर्माण काल के आधार पर अल्पाइन पर्वतीकरण को तीन अवस्थाओं में बांटा गया है—

नवीन अल्पाइन पर्वतीकरण (नवीन टर्शियरी)—ऊपरी मायोसीन से लेकर प्लायोसीन के बाद तक।

मध्य अल्पाइन पर्वतीकरण (प्राचीन टर्शियरी)—ओलिगोसीन से निचले मायोसीन तक।

प्राचीन अल्पाइन पर्वतीकरण (टर्शियरी से पूर्व)—इयोसीन से पूर्व।

पर्वत निर्माण के सिद्धांत

1. कोबर का भूसन्नति सिद्धांतः कोबर ने वलित पर्वतों के निर्माण की व्याख्या हेतु भू-सन्नतियों (Geo-syncline) का सहारा लिया। इसके पीछे उनका उद्देश्य वलित पर्वतों तथा भूसन्नतियों के बीच सम्बन्ध स्थापित करना था। इनका सिद्धांत संकुचन शक्ति पर आधारित है। पृथ्वी में संकुचन होने से उत्पन्न बल से अग्र भागों में गति उत्पन्न होती है, जिससे प्रेरित होकर पर्वत का रूप धारण कर लेता है। कोबर ने प्राचीन दृढ़खण्डों को 'क्रैटोजेन' तथा भू-सन्नतियों को 'ओरेजन' कहा। इस सिद्धांत से 'अल्पाइन पर्वत-क्रम' की व्याख्या आसान जाती है।

2. जेफ्रीज का तापीय संकुचन सिद्धांत (Thermal Contra Theory of Jefrreys): यह सिद्धांत पृथ्वी के संकुचन के इतिहास पर है। विकिरण के कारण पृथ्वी के तापक्रम में निरंतर ह्रास हो रहा है, जि ठण्डी होकर सिकुड़ती जा रही है। गणना के आधार पर जेफ्रीज ने पृथ्वी के बाहरी 500 किमी. तक के भाग में 500°C ताप ह्रास होने

WWW.GRADESETTER.COM

WWW.GRADESETTER.COM

होता है। संकुचन के कारण उत्पन्न तनाव की अधिकता होने पर चट्टानें टूट जाती हैं। संकुचन के कारण उत्पन्न तनाव जब तक सक्रिय रहते हैं तब तक यह प्रक्रिया चलती रहती है। संकुचन की क्रिया अत्यधिक धीमी गति से होती है। संकुचन के कारण उत्पन्न तनाव जब तक सक्रिय रहते हैं तब तक यह प्रक्रिया चलती रहती है। संकुचन की क्रिया अत्यधिक धीमी गति से होती है। संकुचन के कारण उत्पन्न तनाव जब तक सक्रिय रहते हैं तब तक यह प्रक्रिया चलती रहती है। संकुचन की क्रिया अत्यधिक धीमी गति से होती है।

3. होली का महाद्वीपीय फिसल सिद्धांत (Sliding continent theory): यह सिद्धांत महाद्वीपीय भागों का नीचे की ओर खिसकने की गति पर आधारित है। नीचे खिसकने का मुख्य कारण गुरुत्वाकर्षण शक्ति है। इस सिद्धांत से पर्वतीकरण की समस्याओं का पूर्णतया समाधान दिया जा सकता है, ऐसी 'होली' की मान्यता है। इस के आधार पर वर्तमान पर्वतों के वितरण की सुस्पष्ट व्याख्या की जा सकती है। इस सिद्धांत के अनुसार आल्पस-हिमालय पर्वत शृंखलाओं का निर्माण महाद्वीपीय भाग के मध्य अक्षांशीय खाई की ओर फिसलने से हुआ है तथा उत्तर से दक्षिण दिशा में फैले हुए रॉकी एवं एण्डीज पर्वतों की उत्पत्ति महाद्वीपीय भाग के प्रशांत महासागर की ओर फिसलने से हुआ है।

4. होम्स का संवहन तरंग सिद्धांत: इस सिद्धांत का प्रतिपादन 1929 ई. में होम्स ने किया था। इनका उद्देश्य भू-पटल की आकृतियों की उत्पत्ति का निराकरण करना था। इन्होंने पृथ्वी की आंतरिक संरचना को दो मण्डलों में विभक्त किया। ऊपरी मण्डल को क्रस्ट तथा निचले मण्डल को अधःस्तर कहा। क्रस्ट की रचना 'सियाल' तथा अधःस्तर की रचना 'सीमा' से हुई है। होम्स की मान्यता है कि संवहन धाराओं की उत्पत्ति चट्टानों में स्थित रेडियोएक्टिव पदार्थ की उपस्थिति के कारण होती है। यद्यपि क्रस्ट में रेडियो एक्टिव पदार्थ अधिक होते हैं परंतु ताप कम होने की वजह से संवहन धाराएं उत्पन्न नहीं होती जबकि अधःस्तर में तापक्रम अधिक होने से संवहन धाराओं की उत्पत्ति संभव हो जाती है। ये संवहन तरंगें पृथ्वी के केंद्र से उत्पन्न होकर ऊपर की ओर चलने लगती हैं। इनकी दो स्थितियां होती हैं। यदि ये क्रस्ट के समीप आकर एक-दूसरे से दूर जाती है तो वहां तनाव के कारण अवतलन होता है; यदि तरंग एक-दूसरे के पास आकर पुनः अधः स्तर की ओर चली जाती है, तो दबाव के कारण वहां उत्थान होगा। होम्स के अनुसार यही पर्वत निर्माणक दशा है।

5. जोली का रेडियो एक्टिव सिद्धांत: यह सिद्धांत 1925 ई. में प्रतिपादित किया गया। इसे तापीय चक्र सिद्धांत, पृथ्वी के धरातल का इतिहास सिद्धांत एवं रेडियो एक्टिवता सिद्धांत आदि नामों से जाना जाता है। इस सिद्धांत में पर्वतन दो अवस्थाओं का उल्लेख किया गया है—सागरीय अतिक्रमण का काल तथा पर्वतीय निवर्तन का काल। इन्हीं अवस्थाओं में भूसन्नति तथा पर्वत निर्माण होते हैं। इस सिद्धांत का मूल तथ्य रेडियो सक्रिय पदार्थ तथा पृथ्वी का आंतरिक तापक्रम में वृद्धि है।

प्लेट विवर्तनिक सिद्धांत: यह सिद्धांत सर्वाधिक मान्य तथा वैज्ञानिक है। यह टर्शियरी युग के वलित पर्वतों की श्रृंखलाओं की स्पष्ट व पूर्ण व्याख्या करता है।

प्लेट विवर्तनिक सिद्धांत

इस सिद्धांत का प्रतिपादन 1960 ई. में प्रो. हेरीहेस ने किया था। यह सिद्धांत पर्वत तथा उससे सम्बंधित स्थलरूपों का वैज्ञानिक विवेचन करता है। इसके अनुसार महाद्वीपीय (स्थलीय) दृढ़ भूखण्डों को 'प्लेट' कहते हैं तथा इन प्लेटों के प्रवाह व स्वभाव से सम्बंधित अध्ययन को 'प्लेट विवर्तनिकी' कहते हैं। इस संकल्पना का प्रादुर्भाव दो तथ्यों के आधार पर हुआ है—प्रथम महाद्वीपीय प्रवाह तथा द्वितीय सागर-नितल प्रसरण। स्थलमण्डल को कठोर रूप से दृढ़ खंड का बना हुआ माना गया है। सम्पूर्ण भू-मण्डल को 6 प्रमुख तथा कुछ अन्य लघु प्लेटों में विभाजित किया गया है, जो इस प्रकार हैं—

(i) इण्डियन प्लेट,
(ii) यूरेशियन प्लेट,
(iii) अफ्रीकन प्लेट,
(iv) अमेरिकन प्लेट,
(v) पेसिफिक प्लेट,
(vi) अण्टार्कटिक प्लेट

समस्त मुख्य एवं लघु प्लेट एक दूसरे से स्वतंत्र होकर गतिशील होते हैं, क्योंकि समस्त विवर्तनिक, ज्वालामुखी, भूकंप, महादेशजनक (उत्पादि) इन्हीं किनारों के माध्यम से होती हैं। प्लेट के किनारों को तीन रूपों में विभक्त किया जा सकता है—(i) रचनात्मक किनारा (ii) संरक्षी किनारा, (iii) विनाशकारी किनारा।

इन प्लेटों के किनारे सर्वाधिक महत्वपूर्ण होते हैं क्योंकि समस्त विवर्तनिक, ज्वालामुखी, भूकंप, महादेशजनक (उत्पादि) इन्हीं किनारों के माध्यम से होती हैं। प्लेट के किनारों को तीन रूपों में विभक्त किया जा सकता है—(i) रचनात्मक किनारा (ii) संरक्षी किनारा, (iii) विनाशकारी किनारा।

जब दो प्लेट विपरीत दिशाओं में गतिशील होते हैं तो इनके विनाश के कारण नये पदार्थों का निर्माण होता है। जब दो प्लेट एक-दूसरे के बगल से खिसकते हैं तो 'रूपांतर भ्रंश' का सृजन होता है तथा प्लेट के धरातलीय क्षेत्र में अंतर नहीं आता। यह संरक्षी किनारा कहलाता है, तथा जब दो प्लेट एक-दूसरे के विपरीत गतिशील होते हैं, तो भारी किनारा मैंटल में क्षेपित होने लगता है जिससे इसके धरातलीय क्षेत्र का विनाश होता है। इसे विनाशशील किनारा कहते हैं।

ज्ञातव्य है कि महाद्वीपों व महासागरों की तली इन्हीं विशाल प्लेटों पर स्थित है। प्लेटों के प्रवाह के साथ महाद्वीप व महासागर भी प्रवाहित होते हैं। कार्बोनीफरस युग से पेन्जिया के विभिन्न प्लेटों के प्रवाह के कारण ही वर्तमान स्वरूप निर्मित हुआ है। वर्तमान प्रारूप में अभी भी परिवर्तन जारी है। इस आधार पर भविष्य में स्थलरूपों का क्या स्वरूप होगा? इस विषय में अनुमान लगाया जा सकता है। यही प्लेट विवर्तनिक सिद्धांत की सामान्य रूपरेखा है।

सागर-नितल प्रसरण: सागर-नितल प्रसरण, प्लेट विवर्तनिक सिद्धांत का एक हिस्सा है। इसके प्रतिपादक प्रो. हैरी हेस (1960) हैं। इस संकल्पना का आधार **मैसन, वाइन तथा मैथ्यू** आदि भूवैज्ञानिकों का पुराचुम्बकीय सर्वेक्षण है।

प्रो. मैसन ने प्रशांत महासागर व वाइन एवं मैथ्यू ने हिन्द महासागर में चुम्बकीय विसंगति का अवलोकन किया। इन्हीं सर्वेक्षणों के 'चुम्बकीय चार्ट' के आधार पर हेस ने बताया कि मैन्टिल में संवहनीय धाराओं का सतत प्रवाह होता है तथा मध्य महासागरीय कटक मैंटल से ऊपर उठने वाली संवहन तरंगों पर स्थित है। इस कटक (Ridge) के सहारे नये पदार्थों का निर्माण होता है तथा नव निर्मित पदार्थ (क्रस्ट) कटक के दोनों ओर समान मात्रा में सरकती जाती है। इस प्रकार हेस के अनुसार सागर-नितल में प्रसार होता है तथा खड्ड के सहारे क्रस्ट का विनाश होता है। अधिक स्पष्टीकरण के लिए कहा जा सकता है कि कटक के सहारे जब नये लावा का उद्वेलन होता है तो वह प्रारंभिक बेसाल्ट परत को दो भाग में विभक्त कर देती है। डलरिम्पल (1964), ऑपडिक (1966), व हेरिटज (1966) आदि विद्वानों के पुराचुम्बकीय सर्वेक्षण से निम्नलिखित तथ्य उ हुए—

(i) पृथ्वी के मुख्य चुम्बकत्व क्षेत्र में उत्क्रमण होता है,
(ii) मध्य महासागरीय कटक के दोनों ओर सामान्य तथा विपरीत विसंगति एकांतर रूप में पायी जाती है।
(iii) कटक के दोनों ओर विसंगति में पूर्ण समरूपता मिलता

उपरोक्त आधारों पर यह स्पष्ट होता है कि महासागरीय नितल (प्रसार) होता है तथा इसके सहारे नयी बेसाल्ट परत का निर्माण तथ्यों के आधार पर चुम्बकीय पट्टी की आयु का निर्धारण, स प्रसार की दर तथा विभिन्न महाद्वीपों के प्रवाह का समय आव सकता है।

WWW.GRADESETTER.COM

WWW.GRADESETTER.COM

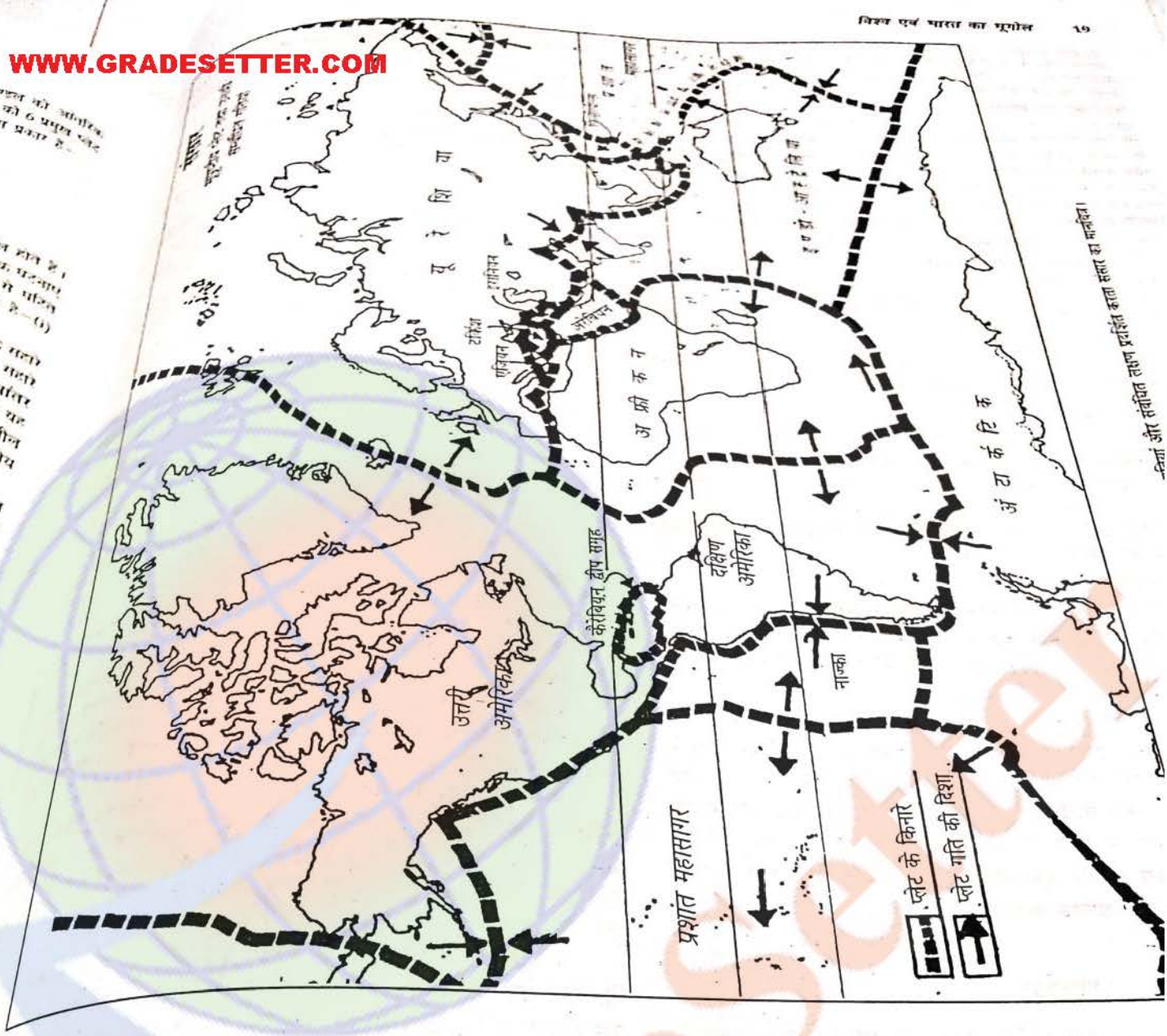

भू-संतुलन की संकल्पना

भू-संतुलन (भू-संतुलन) वह अवस्था होती है, जिसमें परिभ्रमण करती हुई पृथ्वी पर स्थित क्षेत्रों (पर्वत, पठार, मैदान) एवं गहरे क्षेत्रों (सागर, झील, जलाशय आदि) के बीच यांत्रिक स्थिरता बनी रहती है।

इस संकल्पना का प्रारंभ 1889 में भूगर्भवेत्ता डटन ने किया। इनका उद्देश्य पृथ्वी के विभिन्न भागों के बीच संतुलन का अध्ययन करना था। डटन की मान्यता थी कि पृथ्वी पर स्थित ऊंचे भागों (पर्वत, पठार) का घनत्व कम तथा निम्न भागों (सागर) का घनत्व अधिक होता है तभी सबका भार एक रेखा के सहारे बराबर होता है। इस सरल रेखा को 'क्षतिपूरक रेखा', 'आधार तल' व 'समदबाव रेखा' आदि नामों से संबोधित किया जाता है। इस
सर जॉर्ज एयरी, प्राट, बोवी, हेफोर्ड, जोली, ऑ

जॉर्ज एयरी की संकल्पना

सर्वप्रथम एयरी ने यह मत सुझाया कि कम घ
सब स्ट्रैटम (अधः स्तर) पर तैर रहा है; अ
इस आधार पर इन्होंने यह प्रतिपादित कि
गहरी जड़ अधःस्तर में प्रविष्ट होती है त
छोटी जड़ अधः स्तर में होती है। अर्थात्
उतनी ही लम्बी शाखा सब स्ट्रैटम में होती

WWW.GRADESETTER.COM

WWW.GRADESETTER.COM

पठार

धरातल पर द्वितीय श्रेणी के उच्चावच के रूप में पठार का विशिष्ट स्थान है। ऊंचाई ये पर्वतों से कम तथा मैदानों से अधिक होते हैं, जबकि विस्तार की दृष्टि से न के बाद आते हैं। भू-पटल के संभवतः 33 प्रतिशत भाग पर पठारों का विस्तार ठार को इन शब्दों में परिभाषित किया जा सकता है—"धरातल के वे स्थलखंड होते हैं, जिनकी कम से कम एक ढाल आस-पास या निकटतम सतह या ट से अधिक ऊंची तथा खड़ी होती है, तथा उसका ऊपरी भाग मेज की ास और सपाट होता है।"

च एवं ट्रिवार्था के अनुसार "500 फीट से अधिक ऊंचे भू-भाग पठार र ऊंचाई के अनुसार पठार' को परिभाषित करना भ्रामक है। विश्व पर्वतों से भी ऊंचे हैं, जबकि कुछ मैदानों से भी नीचे हैं। उदाहरणार्थ, तिब्बत का पठार 5000 मीटर तथा बोलीविया का पठार मध्यवर्ती मैदान से भी नीचा है। तरफ संयुक्त राज्य अमेरिका का पीडमांट पठार मध्यवर्ती मैदान से भी नीचा है। अतः पठारों की अपेक्षा अधिक उच्चावच का पाया जाता है। मैदानों की अपेक्षा कुछ भी हो सकती है। इनकी अन्य विशिष्टता, इन्हें

पठारों के निर्माण तथा विकास की दशाएं

1. आस-पास की भूमि का यदि अव-संवलन (down-warping) हो जाए तो बचा हुआ स्थल खंड पठार का रूप धारण कर सकता है।
2. किसी विस्तृत स्थलखंड का कुछ भाग अपने निकटतम सतह से ऊंचा उठलन (up-warping) की क्रिया के कारण ऊंचा उठ जाता है तो पठार का निर्माण होता है।
3. मैदानी या निचले भागों में लावा प्रवाह के कारण अत्यधिक मात्रा में लावा निक्षेप हो जाने के कारण भी पठारों का निर्माण होता है।
4. पर्वत निर्माण प्रक्रिया के दौरान पर्वत के साथ लगे कुछ भाग ऊपर नहीं उठ पाने के कारण पठार का रूप धारण कर लेते हैं।
5. पर्वत निर्माण के समय भू-सन्नति के दोनों किनारों पर वलन पड़ने लगता बीच वाले भाग के अप्रभावित रह जाने व बाद में उसमें कुछ उत्थान हो जाने से बाद पठार का निर्माण हो जाता है।
6. ऊंचे पर्वतीय भाग जब अनाच्छादन के कारण कटकर व घिसकर नीचे हो जाते हैं, तो पठार का रूप धारण कर लेते हैं।
7. वायु अपने साथ मिट्टी के कण को भी उड़ा कर लाती है। निचले भागों में इनके निरंतर निक्षेप से पठार का निर्माण हो जाता है।

पठारों का वर्गीकरण

भौगोलिक स्थिति, निर्माण प्रक्रिया, आकृति, धरातलीय रचना, जलवायु तथा विकास की अवस्था के अनुसार पठारों के कई प्रकार हैं। अतः इन्हें आधार बनाकर पठारों का वर्गीकरण इस प्रकार किया जा सकता है—

I. निर्माण प्रक्रिया के अनुसार

पठारों की उत्पत्ति में बहिर्जात तथा अंतर्जात दोनों प्रकार की शक्तियों का योगदान होता है। इसके अतिरिक्त आकस्मिक अंतर्जात बलों के द्वारा भी पठार का निर्माण होता है।

बहिर्जात शक्तियों के द्वारा निर्मित पठार को निम्न भागों में विभाजित किया जा सकता है—

हिमानीकृत पठार (glacial plateau): पर्वतीय भाग में हिमनद के द्वारा से घर्षित पठारों का निर्माण हो जाता है। अंटार्कटिका एवं ग्रीनलैंड इसी के पठार हैं। भारत स्थित गढ़वाल का पठार भी हिमनद अपरदन से निर्मित है। हिमनद जलोढ़ के निक्षेप से भी पठारों की रचना होती है। जर्मनी का पठार तथा कश्मीर के 'मर्ग' हिमानी जलोढ़ निर्मित पठार हैं।

पवन द्वारा निर्मित पठार (eolian plateau): पवन के निक्षेप से भी पठारों का निर्माण होता है। पवन रेत और धूल के सूक्ष्म कणों को अपने द्वारा उड़ाकर सुदूर क्षेत्रों में एकत्रित कर देती है जिससे पठारों का निर्माण होती है। चीन का लोयस पठार तथा पाकिस्तान का पोटवार पठार इसी का उदाहरण है।

जल द्वारा निर्मित पठार (fluvial plateau): नदियों के तल क्रिया के कारण स्थलखंड ऊंचा होता रहता है, तथा बाद में भू-संचलन उस स्थलखंड में उत्थान भी हो जाता है। फलतः पठार का निर्माण में विंध्य पठार, चेरापूंजी या मेघालय पठार तथा बर्मा का शान के पठार हैं।

अंतर्जात बल द्वारा उत्पन्न पठार को निम्न भागों में वि सकता है—

पटल विरूपणी पठार (diastrophic plateau): शक्तियों के द्वारा धरातल का क्षैतिज और लम्बवत् संचलन के कारण भूपटल का उत्थान होता है, जिससे उच्च पठारों विश्व के सर्वोच्च तथा अत्यधिक विस्तृत पठारों का निर्माण हुआ है। पटल विरूपण से पांच प्रकार के पठारों का नि

होम्स की संकल्पना

ऑर्थर की संकल्पना सर जॉर्ज एयरी की संकल्पना से काफी मिलती है। इन्होंने भी स्वीकार किया कि अधिक ऊंचे भाग हल्के हैं तथा निचले भाग भारी हैं एवं सियाल, सीमा पर तैर रहा है। इन्होंने भूकंपीय लहरों के आधार पर पृथ्वी के अन्दर विभिन्न घनत्व वाली परतों का पता लगाया। इस आधार पर पर्वतीय आधार के नीचे 40 किमी. या इससे अधिक लम्बी सियाल की जड़ें होती हैं तथा सागर तल पर मात्र 10 से 12 किमी. लम्बी जड़ों को माना। इसी प्रकार सागर-नितल में सियाल की अत्यल्प पतली जड़ की कल्पना की। होम्स ने माना कि ऊंचे उठे भाग इसलिए स्थित हैं क्योंकि उनके नीचे गहराई तक कम घनत्व वाला हल्का पदार्थ पाया जाता है। निचले भागों के नीचे अधिक घनत्व वाले भारी पदार्थ होते हैं। होम्स के अनुसार यद्यपि धरातल पर पूर्ण संतुलन की स्थिति नहीं होती अपितु यह दशा पूर्ण संतुलन की ओर इंगित करती है।

WWW.GRADESETTER.COM

WWW.GRADESETTER.COM

...पठार (intermontane plateau): ऊँचे-ऊँचे पर्वत ...पर्वतों के अंतर्पर्वतीय पठार कहते हैं। विश्व के सर्वोच्च पठार ...का निर्माण ज्वालामुखी क्रिया तथा वलित पर्वतों के निर्माण ...होता है। इस क्रम में भू-सन्धति के किनारों पर पर्वत श्रेणियों के ...साथ-साथ वलित स्थल खंड के उत्थान से अंतरपर्वतीय पठारों का निर्माण ...है।

...पठार (piedmont plateau): पर्वतों के आधार या तलहटी ...पठार कहलाते हैं। इन पठारों के एक ओर ऊँचे पर्वतों ...तथा दूसरे ओर सागर की स्थिति होती है। पठार का पैदानोन्मुख या ...कगारयुक्त (escarpment) होता है। गिरिपदीय पठारों ...की रचना के साथ भी होती है। संयुक्त राज्य अमेरिका ...पर्वतों की रचना के साथ दक्षिणी अमेरिका का पैटागोनिया पठार ...कोलेरैडो पठार तथा दक्षिणी अमेरिका का पैटागोनिया पठार ...का आदर्श उदाहरण हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका के पीडमांट का ...अत्यंत तीव्र है, अतः कई नदियां यहां प्रपातों का निर्माण करती ...है। अमेरिका की प्रपात रेखा (fall line) इसी पठार के सहारे ...पठार तथा संयुक्त राज्य अमेरिका में ओजार्क का पठार ऐसे ही ...हैं।

...महाद्वीपीय पठार (continental plateau): अत्यधिक विस्तृत पठार ...महाद्वीपीय पठार अक्सर पर्वतों से दूर किंतु सागर तट ...पठार होते हैं। महाद्वीपीय पठार अक्सर पर्वतों से दूर किंतु सागर तट ...से अकस्मात् तीन ढालों द्वारा जुड़े रहते हैं। भारत का प्रायद्वीपीय पठार, ...दक्षिण अफ्रीका का पठार, आस्ट्रेलिया का पठार, ब्राजील का पठार, ...पठार, लैब्रेडोर का पठार, साइबेरिया तथा अंटार्कटिका का पठार ...पठार, तिब्बत का पठार भी निरिपदीय पठार है।

...पठार (dome shaped plateau): ज्वालामुखी प्रक्रिया ...पठार (dome shaped plateau): ज्वालामुखी प्रक्रिया ...के दौरान इस तरह से होता है कि बीच का भाग ऊंचा तथा किनारे ...उद्गार इस तरह से होता है कि बीच का भाग ऊंचा तथा किनारे ...पठार होते हैं, तो गुम्बदाकार पठारों की रचना होती है। ज्वालामुखी ...कभी-कभी धरातल पर लावा प्रवाह होने के स्थान पर स्थलखंड ...भी गुम्बदाकार पठारों की रचना होती है। ज्वालामुखी ...कभी-कभी धरातल पर लावा प्रवाह होने के स्थान पर स्थलखंड ...का निर्माण हो जाता है। भारत में छोटा ...है जिससे पठारों का निर्माण हो जाता है। भारत में छोटा ...पठार तथा संयुक्त राज्य अमेरिका में ओजार्क का पठार ऐसे ही ...हैं।

...पठार (coastal plateau): सागरीय तटों के साथ-साथ विस्तृत ...पठार (coastal plateau): सागरीय तटों के साथ-साथ विस्तृत ...पठार कहा जाता है। उदाहरणार्थ, भारत का कारोमंडल ...तटीय पठार का उत्तम उदाहरण है।

...पठार को निम्न भागों में विभाजित ...अंतर्जात बलों द्वारा निर्मित पठार को निम्न भागों में विभाजित ...है—

...पठार (volcanic plateau): ज्वालामुखी उद्गार क्रिया के ...पठार (volcanic plateau): ज्वालामुखी उद्गार क्रिया के ...लावा निरंतर परत दर परत होता रहता है तो वह स्थलखंड समीपी ...पठार का निर्माण ...है। फलतः लावा निर्मित या ज्वालामुखी पठार का निर्माण ...भारत के 3 लाख वर्ग मील में लावा परत जमाव से निर्मित ...के अतिरिक्त न्यूजीलैण्ड, दक्षिण अफ्रीका, ब्राजील, संयुक्त ...कोलम्बिया पठार ज्वालामुखी पठारों के अंतर्गत आते हैं।

...अंतर्गत निम्न पठार भी आते हैं—

...लावा plateau): इनका निर्माण लावा निक्षेपों के जमाव ...से होते हैं—1. अंतर्वेधी पठार (intrusive plateau), ...अपवाह (extrusive plateau)

...के अनुसार

...पठार के चार प्रकार हैं—

III. आकृति के अनुसार

आकृति के अनुसार पठारों के प्रकार निम्नलिखित हैं—

(i) गुम्बदाकार पठार (dome-shaped plateau): ऐसे पठारों का बाह्य रूप गुम्बद के समान गोलाकार होता है, इसलिए इन पठारों को गुम्बदाकार पठार कहते हैं। भारत में छोटा नागपुर का पठार, संयुक्त राज्य अमेरिका में ओजार्क का पठार इसके प्रमुख उदाहरण हैं।

(ii) विच्छेदित या विभाजित पठार (dissected plateau): जब धरातल कठोर चट्टानों में निर्मित हो जब नदी, नालों के अपरदन से अत्यधिक कटे-फटे विषम पठारों की रचना होती है। इन पठारों को विच्छेदित पठार कहते हैं। इन पर उच्चावच अधिक प्राप्त होते हैं, अर्थात् इन पर कहीं पहाड़ियां तो कहीं गहरी-गहरी घाटियां पायी जाती हैं। भारत में असम का पठार विच्छेदित पठार है।

(iii) सोपानकार पठार (step-like plateau): पठारी क्षेत्रों में भंजन क्रिया के कारण जब भ्रंशों के सहारे अनेक कगारों की उत्पत्ति हो जाती है तब सीढ़ी या सोपान के आकार के पठारों की रचना होती है। भारत का विन्ध्य पठार सोपानकार पठार है।

(iv) सपाट या चौरस पठार (flat plateau): पर्वत श्रेणियों से घिरा तथा समुद्रतल से अधिक ऊंचाई पर स्थित सपाट धरातलयुक्त पठार सपाट या चौरस पठार कहलाते हैं जैसे—तिब्बत का पठार।

IV. पृष्ठीय धरातल के अनुसार

इसके अंतर्गत दो प्रकार के पठार होते हैं—

(i) विषम पठार (uneven plateau): ऐसे पठारों का धरातल उच्चावच युक्त होता है। अतः इसे असमतल पृष्ठवाला पठार भी कहते हैं।

(ii) गिरिप्रस्थ पठार या सम पठार (tableland plateau): इस प्रकार के पठार सम धरातल युक्त चौरस और सपाट होते हैं।

V. जलवायु के अनुसार

जलवायु के आधार पर पठारों को तीन भागों में बांटा गया है—

(i) शुष्क या मरुस्थलीय पठार (arid or desert plateau): उष्ण कटिबंध तथा मध्य अक्षांशों में स्थित पठार शुष्क या मरुस्थलीय पठार कहलाते हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका का कोलैरैडो, मध्य एशिया का तारिम, पाकिस्तान का पोटवार तथा अरब का पठार शुष्क या मरुस्थलीय पठार के उदाहरण हैं।

(ii) आर्द्र पठार (humid plateau): अत्यधिक वर्षा के कारण जब किसी पठारी धरातल का नदी, नाले अधिक अपरदन कर देते हैं, तब पठार पर उनके द्वारा अवनालिकाओं, कंदराओं इत्यादि का विकास हो जाता है। फलतः धरातल विषम हो जाता है। असम या मेघालय का पठार आर्द्र पठार का उदाहरण हैं।

(iii) हिमाच्छादित पठार (ice covered plateau): उच्च अक्षांशों में कम तापमान के कारण धरातल अधिकांशतः हिमाच्छादित हो जाता है। इस प्रकार के हिमाच्छादित उच्च स्थलखंड को हिमाच्छादित पठार कहते हैं। ग्रीनलैंड और अंटार्कटिका के पठार को इसी प्रकार का पठार माना जाता है।

पठार से संबंधित कुछ महत्वपूर्ण तथ्य

- तिब्बत विश्व का सबसे ऊंचा पठार है। यह सागर तल से औसत रूप से 16,000 फीट ऊंचा है, जबकि इसका कुछ भाग 18,000 फीट तक ऊंचा है।
- तिब्बत का पठार क्षेत्रीय विस्तार की दृष्टि से भी विश्व में सबसे बड़ा है। इसका क्षेत्रफल 7,00,000 से 8,00,000 वर्ग मील तक है।
- बोलिविया तथा पेरू का पठार अंतरापर्वतीय पठार है। इस पर स्थित टिटीकाका झील ताजे पानी की गहरी झील है, जिसकी सतह सागर-तल से 12,370 फीट की ऊंचाई पर है।
- जम्मू-कश्मीर में हिमानी निक्षेप से छोटे-छोटे पठारों का निर्माण होता है। पठारों को मर्ग या मार्ग कहा जाता है। सोजमर्ग, गुलमर्ग आदि ऐसे ही हैं।
- जीर्ण या वृद्ध पठार की पहचान उन पर उपस्थित 'मेसा' से होती है कठोर चट्टानों से निर्मित सपाट संरचनाएं हैं जो पठार पर अवशेष रूप में के प्रभाव के बावजूद बची रह जाती हैं।

WWW.GRADESETTER.COM

WWW.GRADESETTER.COM

VI. विकास की अवस्था या अपरदन चक्र के अनुसार

अपरदन के विभिन्न साधनों की सक्रियता के कारण पठार विकास की कई अवस्थाओं से गुजरते हैं। इस आधार पर पठार के चार प्रकार बताए गए हैं—

(i) युवा पठार (young plateau): युवा या तरुण पठारों का धरातल निकटवर्ती मैदानी भाग से तीव्र ढाल युक्त कगारों द्वारा पृथक होता है। इन पठारों पर बहने वाली नदियों की संख्या कम होती है, परंतु वे गहरी घाटियों का निर्माण करती हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका का कोलेरेडो पठार ऐसा ही पठार है।

(ii) प्रौढ़ पठार (mature plateau): जिन पठारों का धरातल अत्यधिक विषम होता है उन्हें प्रौढ़ पठार कहते हैं। इन पठारों के कटक तीक्ष्ण तथा शिखर नुकीली होने लगते हैं। कंदराओं का भी अधिक विकास हो जाता है। अप्लेशियन पठार को प्रौढ़ पठार माना जाता है।

(iii) जीर्ण या वृद्ध पठार (old plateau): जब पठारी धरातल का अत्यधिक अपरदन हो जाता है तो पठार पर उपस्थित उच्चावच समाप्त हो जाते हैं। अंततः पठार एक समप्रायः धरातल के रूप में परिवर्तित हो जाता है। इस पठार पर कहीं-कहीं कठोर चट्टानखंड टीले के रूप में बचे रह जाते हैं, जिन्हें मेसा व बुटा कहा जाता है। भारत में रांची का पठार इसी श्रेणी का पठार है।

(iv) पुनर्युवनित पठार (rejuvenated plateau): जीर्ण पठारों पर यदि भूसंचलन के कारण उत्थान हो जाता है तो पठार अपनी वृद्धावस्था से अकस्मात युवावस्था में आ जाता है, अर्थात् पठार का पुनर्युवन हो जाता है। इस प्रकार के पठार पुनर्युवनित पठार कहलाते हैं। इन पर पुनः अपरदन क्रिया आरंभ हो जाती है। संयुक्त राज्य अमेरिका का मिसौरी पठार इसी श्रेणी का पठार है। भारत में रांची का 'पार-प्रदेश' भी पुनर्युवनित पठार है।

बहिर्जात बल के अनुसार

बहिर्जात बल पठारों का निर्माण तो कम करते हैं किंतु उनका अपरदन द्वारा विनाश अधिक करते हैं। फिर भी बाह्य शक्तियों में नदियां, हिमानियां तथा पवन अपनी अपरदन तथा निक्षेप की क्रियाओं से पठारों की रचना करती हैं। इस आधार पर पठार के चार प्रकार बताए गए हैं।

(i) जलीय पठार (Acuquous Plateau): इन पठारों की उत्पत्ति जल के द्वारा होती है। नदियों द्वारा तलछट के निक्षेप द्वारा स्थल भाग ऊंचा होता रहता है और कालान्तर में भूगर्भिक हलचलों के कारण ये भाग पठार के रूप में समुद्र से बाहर आ जाते हैं। भारत का विन्ध्य पठार और म्यांमार (बर्मा) में शान का पठार इसके प्रमुख उदाहरण हैं।

(ii) वायव्य पठार (Aeolian Plateau): ऐसे पठार वायु के परिवहन एवं निक्षेपण से बनते हैं। जैसे—चीन में लोयस का पठार और पाकिस्तान के रावलपिण्डी ले का पोटवार का पठार।

(iii) हिम्य पठार (Glacial Plateau): पर्वतीय प्रदेशों में हिमानी द्वारा दित और घिसकर सपाट किए पठार हिम्य पठार कहलाते हैं। अंटार्कटिका ीनलैंड में हिमानी द्वारा ऐसे कई अपरदित पठार हैं। भारत में गढ़वाल का सका प्रमुख उदाहरण है।

v) उत्स्यन्द पठार (Effusive Plateau); ऐसे पठारों की उत्पत्ति ी के उद्गार से निकले लावा के चारों ओर फैलकर जम जाने से होती में दक्षिण का पठार और संयुक्त राज्य अमेरिका में कोलम्बिया का पठार उदाहरण हैं।

विश्व के प्रमुख पठार

	स्थिति
ठार	ग्रीनलैण्ड द्वीप (अटलांटिक महासागर के उत्तरी भाग में)
ा का पठार	अलास्का (संयुक्त राज्य अमेरिका)
र	संयुक्त राज्य अमेरिका (ओरेगन, वाशिंगटन और इडाहो राज्यों के मध्य)
ग्रेट बेसिन का पठार	ओरेगन, नेवादा, यूटाह और कैलीफोर्निया (सं.रा. अमेरिका) कोलम्बिया पठार के दक्षिण में कोलोरेडो और कोलम्बिया नदी के मध्य।
कोलोरेडो का पठार	यूटाह और एरेजोना राज्य (सं.रा. अमेरिका), ग्रेट बेसिन पठार के दक्षिण में।
मेक्सिको का पठार या ज्वालामुखी पठार	मेक्सिको की पश्चिमी सियरामाद्रे और पूर्वी सियरामाद्रे पर्वत श्रेणियों के मध्य।
बियापास का पठार	दक्षिण मेक्सिको में प्रशांत महासागर के मध्य
ब्राजील का पठार	ब्राजील
बोलिविया का पठार	बोलिविया राज्य में एण्डीज पर्वतमाला में।
मेसेता का पठार	स्पेन में आइबेरियन प्रायद्वीप पर
तिब्बत का पठार	हिमालय पर्वत के उत्तर और कुनलुन पर्वत के दक्षिण में (मध्य एशिया)
मंगोलिया का पठार	उत्तर मध्य चीन तथा मंगोलिया
यूनान या इण्डोचाइना का पठार	म्यांमार का शान प्रदेश, चीन एवं वियतनाम (दक्षिण एशिया का पूर्वी प्रायद्वीपीय भाग)
ईरान या एशिया माइनर का पठार	ईरान
अरब का पठार	दक्षिण-पश्चिम एशिया (विशेष रूप से सऊदी अरेबिया)
तुर्की या अनातोली का पठार	तुर्की में पोन्टिक एवं टारस श्रेणियों के मध्य एजियन तट से आर्मीनिया गांठ तक
भारतीय प्रायद्वीपीय या दक्कन का पठार	भारत का दक्षिणी प्रायद्वीपीय भाग।
अबीसीनिया या इथियोपिया का पठार	पूर्वी अफ्रीका के इथियोपिया एवं सोमालिया राज्यों में विस्तृत।
दक्षिणी अफ्रीका का पठार	दक्षिण अफ्रीका का केप प्रांत, नेटाल तथा वसूतोलैण्ड का भाग
मेडागास्कर या मलागासी का पठार	सम्पूर्ण मेडागास्कर द्वीप (अफ्रीका के दक्षिण-पूर्व में हिन्द महासागर में) को मध्यवर्ती भाग
ऑस्ट्रेलिया का पठार	ऑस्ट्रेलिया महाद्वीप का लगभग आधा पश्चिमी भाग

जैव-भूगर्भिक रासायनिक चक्र

जीवमण्डल में पदार्थ भी सीमित मात्रा में ही उपलब्ध हैं। इसलिए प्राकृतिक संतुल बनाए रखने के लिए प्रकृति ने ऐसे नियम बनाए हैं, जिसके अनुसार पदार्थ अजी घटकों से जीवीय घटकों में और फिर जीवीय घटकों से अजीवीय घटकों में जाते हैं। इसे ऊर्जा तथा पदार्थों का चक्रीकरण कहते हैं।

सभी जीवों को मुख्यतः चार तत्वों की आवश्यकता होती है। ये तत्व हैं—ऑक्सीजन, नाइट्रोजन तथा हाइड्रोजन। ये तत्व वातावरण से जीवों में औ से वातावरण में घूमते रहते हैं। जीवमण्डल में विद्यमान ये चक्र जैव-रासायनिक चक्र कहलाते हैं।

नाइट्रोजन चक्र

जीवमण्डल में नाइट्रोजन का महत्व सभी प्रकार जीवों के लिए होता है जीवों के विकास के लिए नाइट्रोजन की यौगिक के रूप में आवश्यक यद्यपि वायुमण्डल में नाइट्रोजन की सर्वाधिक मात्रा (लगभग 78 परन्तु जीवित जीव इसका प्रत्यक्ष उपभोग नहीं कर पाते हैं। पौधे अमोनियम लवण तथा नाइट्रेट के रूप में मिट्टियों से प्राप्त कर

वायुमण्डलीय नाइट्रोजन के पौधों तथा प्राणियों के लिए अ प्रकार के यौगिकों में परिवर्तन तथा इन नाइट्रोजन यौगिकों के

WWW.GRADESETTER.COM

WWW.GRADESETTER.COM

...ड़ाले राज्य
...पठार के
...रया नदियों
...मेरिका),
...और पूर्वी
...पार के
...ा में।
...र्वत
...म
...ा)

...ड़ में नाइट्रोजन के रूप में वापस आने की प्रक्रिया को नाइट्रोजन
...ड़ते हैं। नाइट्रोजन चक्र निम्न चरणों में पूर्ण होता है—
...वायुमण्डलीय नाइट्रोजन का मिट्टियों में स्थानांतरण
...मिट्टियों से नाइट्रोजन का पौधों तथा प्राणियों में स्थानांतरण
...पौधों तथा प्राणियों से नाइट्रोजन की मिट्टियों में वापसी
...नाइट्रोजन की वायुमण्डल में वापसी

...कार्बन चक्र
...लगभग 2। प्रतिशत ऑक्सीजन स्वतंत्र रूप में है। स्वच्छ एवं समुद्री
...(H₂O) तथा कार्बन डाइ ऑक्साइड (CO_2) के रूप में ऑक्सीजन
...कार्बनेट्स (CO_3), नाइट्रेट्स (NO_3), सल्फेट्स तथा फॉस्फेट्स
...में ऑक्सीजन होती है। वायुमण्डल के ऊपर ओजोन (O_3)
...रूप में ऑक्सीजन विद्यमान है। ऑक्सीजन का एक चक्र लगभग
...में पूर्ण होता है।

...में कार्बन तत्व कार्बन डाइ ऑक्साइड गैस के रूप में विद्यमान रहता
...में कार्बन की मात्रा लगभग 0.03-0.04 प्रतिशत होती है। इसके
...डाइऑक्साइड जलाशयों (तालाब, झील, समुद्र, आदि) में भी जल
...में रहती है। वातावरण में CO_2 की अनुकूलतम मात्रा पौधों
...संश्लेषण हेतु चाहिए। दूसरी ओर आवश्यकता से अधिक CO_2
...हानिकारक होती है। परन्तु प्रकृति में कार्बन चक्र द्वारा CO_2
...नियंत्रित रहती है।

जीवमण्डल में कार्बन चक्र निम्नलिखित चरणों में पूर्ण होता है—
(i) हरे पौधे, वातावरण में कार्बन डाइ ऑक्साइड लेकर प्रकाश संश्लेषण क्रिया द्वारा कार्बोहाइड्रेट्स का निर्माण करते हैं।
(ii) वातावरण में सभी जीव श्वसन द्वारा कार्बन डाइ ऑक्साइड छोड़ते हैं।
(iii) जलीय पौधों से कार्बन डाइ ऑक्साइड जलीय खाद्य शृंखला में स्थानांतरित हो जाती है।
(iv) जलीय पौधे तथा जन्तु श्वसन क्रिया में कार्बन डाइ ऑक्साइड जल में घोल देते हैं, जो प्रायः फिर से जलीय पौधे प्रकाश-संश्लेषण के लिए उपयोग में ले लेते हैं।
(v) जीवों के उत्सर्जी पदार्थों से कार्बन डाइ ऑक्साइड वातावरण में पहुंचती है।

जलीय चक्र

जीवमण्डल में जल सर्वाधिक महत्वपूर्ण तत्व होता है। इसके बिना जीवन संभव नहीं है। जल चक्र निम्नलिखित चरणों में पूर्ण होता है—
(i) जलाशयों जैसे, तालाब, नदी, झील, समुद्र, महासागर, आदि से जल, वाष्पीकरण क्रिया द्वारा वातावरण में भाप के रूप में पहुंचता है। इसके अतिरिक्त भारी मात्रा में पेड़-पौधे जल का भूमि से अवशोषण करके वाष्पोत्सर्जन द्वारा वायुमण्डल में जल वाष्प छोड़ते हैं। ये भाप के कण बादलों का निर्माण करते हैं।
(ii) वर्षा होने पर अधिकांश जल पृथ्वी पर आता है। कुछ जल पृथ्वी तक आते-आते ही वाष्पीकरण द्वारा वातावरण में लुप्त हो जाता है। पृथ्वी पर पहुंचकर काफी जल पृथ्वी द्वारा सोख लिया जाता है, जो भूमिगत जल कहलाता है।

4. वायुमण्डल

...के चारों तरफ कई सौ कि.मी. की मोटाई में व्याप्त गैसीय आवरण को ...कहा जाता है। इसकी उत्पत्ति कब और कैसे हुई, यह प्रश्न उतना ...है जितनी कि स्वयं पृथ्वी की उत्पत्ति। वैज्ञानिकों का मानना है कि प्रारंभिक ...में हीलियम तथा हाइड्रोजन जैसी अत्यधिक हल्की गैसें पृथ्वी से अलग ...नहीं जिनसे प्राथमिक वायुमण्डल का निर्माण हुआ होगा। वर्तमान वायुमण्डल ...से नहीं बिल्कुल ऊपरी भाग में अत्यधिक ऊंचाई पर पायी जाती हैं। जैसे-जैसे ...तथा जलमण्डल का विकास होता गया प्राथमिक वायुमण्डल के संघटन ...और परिवर्तन की प्रक्रिया से प्रभावित होता रहा है। जलवायु शास्त्रा के ...विद्वान किचफील्ड के अनुसार इस बात के स्पष्ट प्रमाण मिलते हैं कि ...अपने वर्तमान रूप में, आज से 50 करोड़ वर्ष पूर्व, अर्थात् कैम्ब्रियन ...में आया होगा।

...की गुरुत्वाकर्षण शक्ति के कारण वायुमण्डल इससे बंधा हुआ है। ...वायुमण्डल का भार लगभग 5.6×10^{15} टन तथा पृथ्वी का भार 10^{21} टन है। वायुमण्डल के कुल भार का लगभग आधा भाग धरातल से ...मीटर की ऊंचाई तक ही पाया जाता है और 29 कि.मी. की ऊंचाई तक ...प्रतिशत भाग केंद्रित है।

...मण्डल में प्रतिरोधात्मक शक्ति होने के कारण अंतरिक्ष से पृथ्वी की ओर ...उल्का आदि आकाशीय पिण्ड धरातल पर पहुंचने से पूर्व ही नष्ट हो ...मण्डल पृथ्वी के वातावरण के लिए 'ग्रीन हाउस प्रभाव' या 'विशाल ...तरह काम करता है जो सौर विकिरण की लघु तरंगों को तो पृथ्वी ...है पर पृथ्वी द्वारा विकसित दीर्घ तरंगों को बाहर जाने से रोकता ...पृथ्वी का औसत तापमान 35° तक बना रहता है अन्यथा यहां ...दिन में 100° से.ग्रे. तापमान और रात में –100° से.ग्रे. तापमान

...की ऊपरी स्तर की सीमा 10,000 कि.मी. से आरंभ होती है।

उपग्रहों से प्राप्त नवीनतम आंकड़ों से यह पता चला है कि 100 कि.मी. के बाद हल्की गैसें अलग जाती हैं और पृथ्वी के समानांतर कर्क संकेन्द्रित परतों का निर्माण करती हैं जिसमें सबसे नीचे नाइट्रोजन परत होती है, (100-200 कि.मी. के नीचे) तत्पश्चात् ऑक्सीजन (200-1100 कि.मी.), हीलियम (1100-3500 कि.मी.) और हाइड्रोजन की परत जिसके फैलाव की ऊपरी सीमा स्पष्ट रूप से परिभाषित नहीं है।

वायुमण्डल का संघटन

वायुमण्डल को मुख्य रूप से दो स्थूल भागों में बांटा जा सकता है—
(1) सम मण्डल (2) विषम-मण्डल।

1. सम मण्डल (Homosphere): यह वायुमण्डल का सबसे निचला भाग है जिसकी बाह्य सीमा 88 कि.मी. है। इसके अंतर्गत (a) क्षोभमण्डल, (b) समताप मण्डल, तथा; (c) मध्यमण्डल या मेसोस्फीयर आते हैं। प्रत्येक के बीच संक्रमण पेटी पायी जाती है जिसे ट्रोपोपाज, स्ट्रेटोपाज तथा मेसोपाज कहा जाता है।

2. विषम-मण्डल (Heterosphere): इस मण्डल की विभिन्न परतों के रासायनिक और भौतिक गुणों में काफी भिन्नता पायी जाती है। इसे थर्मोस्फीयर भी कहा जाता है क्योंकि इसमें वायुमण्डल की अंतिम सीमा तक ऊंचाई में वृ के साथ तापमान भी बढ़ता है। इस भाग का अनुमानित उच्चतम तापमान 10,0 फा. है। इस उच्च भाग में गैस अत्यधिक विरल हो जाती है। यहां इतना तापमान सौर विकिरण के फोटो-रासायनिक प्रभाव के कारण होता है। इस को रासायनिक तत्वों की प्रमुखता के आधार पर चार स्तरों में बांटा गया है नाइट्रोजन-स्तर (b) ऑक्सीजन-स्तर (c) हीलियम-स्तर (d) हाइड्रोजन

वायुमण्डल में गैसों के अतिरिक्त जल-वाष्प तथा धूल कण भी भ में पायी जाती हैं। इनका मौसम अथवा जलवायु की दृष्टि से बड़ा वायुमण्डल के इन विभिन्न तत्वों की अपनी भिन्न-भिन्न विशेषताएं

गैसें: वायुमण्डल का 99 प्रतिशत भाग नाइट्रोजन और ऑक्सीज है। वायुमण्डल के निचले हिस्से में भारी गैसें जैसे—कार्बन, ऑक्सीज

WWW.GRADESETTER.COM

WWW.GRADESETTER.COM

तथा नाइट्रोजन पायी जाती हैं। ये सक्रिय गैस हैं जो क्रमशः 20 कि.मी., 100 कि.मी. तथा 125 कि.मी. की ऊंचाई पर व्याप्त हैं। दूसरी तरफ नियॉन, क्रिप्टान, हीलियम जैसी हल्की तथा निष्क्रिय गैसें अधिक ऊंचाई पर विस्तृत हैं। उल्लेखनीय है कि कार्बन डाईआक्साइड गैस, आक्सीजन और नाइट्रोजन की तुलना में काफी कम मात्रा में वायुमण्डल में उपलब्ध है पर इसकी उपयोगिता 'पृथ्वी पर जीवन' के संदर्भ में निस्संदेह अनिवार्य है। कार्बन गैस ताप का अवशोषण करने में सक्षम होती है जिससे वायुमण्डल की परतें गरम रहती हैं।

प्रस्तुत है:

शुष्क हवा की संघटना में गैसों का प्रतिशत

गैस	प्रतीक	प्रतिशत आयतन
नाइट्रोजन	N_2	78.088
ऑक्सीजन	O_2	20.949
ऑर्गन	Ar	0.93
कार्बन डाइऑक्साइड	Co_2	0.03
नियॉन	Ne	0.0018
हीलियम	He	0.0005
ओजोन	O_3	0.00006
हाइड्रोजन	H	0.00005
क्रिप्टान	Kr	0.000114
मीथेन	CH_4	0.00015
जेनान	Xe	अज्ञात

ओजोन एक सक्रिय गैस है जो वायुमण्डल में बहुत ऊंचाई पर कम मात्रा में पायी जाती है परंतु जलवायु की दृष्टि से इसका महत्वपूर्ण योगदान है। ओजोन मण्डल सूर्य से निकलने वाली पराबैंगनी किरणों को आंशिक रूप से सोख लेता है और इस प्रकार विकिरण का केवल उतना ही भाग धरातल पर पहुंचने दिया जाता है जितना आवश्यक है।

जल वाष्पः धरातल के निकट वायु में सभी ओर हमेशा जल वाष्प कम या अधिक मात्रा में पायी जाती है। इनकी मात्रा में परिवर्तन तापमान तथा आर्द्रता के अनुसार होता रहता है। ध्रुवीय क्षेत्रों में जल-वाष्प की मात्रा बहुत कम होती है जबकि विषुवत रेखा के पास सर्वाधिक होती है। वायुमण्डल के कुल जलवाष्प का 90 प्रतिशत भाग 8 कि.मी. की ऊंचाई तक पाया जाता है जबकि सिर्फ 1 प्रतिशत 10 कि.मी. से ऊपर पाया जाता है।

जल वाष्प का महत्व मौसम और जलवायु के दृष्टिकोण से सर्वाधिक है ये सौर विकिरण तथा पार्थिव विकिरण को अंशतः सोख लेती हैं। ये सौर विकिरण के लिए अधिक पारदर्शक होते हैं अतः धरातल के तापमान को सम बनाए रखते हैं। वृष्टि के विविध रूप इनके घनीभवन का परिणाम है। जलवाष्प के बारे में यह तथ्य उल्लेखनीय है कि वायु के तापमान में वृद्धि के साथ वायु की जलवाष्प ग्रहण क्षमता बढ़ती है।

धूल कणः धूल कण वायुमण्डल की निचली परतों में तैरते रहते हैं। वस्तुतः, युमण्डल में गैस और जलवाष्प के अतिरिक्त जितने भी ठोस पदार्थ कण के में मौजूद हैं, वे धूल कण ही हैं। धूल कणों का जलवायु की दृष्टि से बहुत क महत्व है, और ये विकिरण के कुछ भाग को सोखते हैं तथा उनका परावर्तन कीर्णन भी करते हैं जिसके कारण ऊषा काल एवं गोधूलि की तीव्रता तथा अवधि निर्धारित होती है। इनके द्वारा वरणात्मक या चयनात्मक प्रकीर्णन ाश नीला तथा सूर्योदय एवं सूर्यास्त के समय लाल दिखता है। धूलकण के लिए जलग्राही नाभिकों (hygroscopic nuclei) की तरह कार्य शुष्क प्रदेशों की वायुमण्डलीय परत में आर्द्र प्रदेशों की अपेक्षा अधिक ाप्त होते हैं।

वायुमण्डल की संरचना

ऊंचाई 16 से 29 हजार कि.मी. तक बतायी जाती है। परंतु धरातल कि.मी. ऊंचा वायुमण्डल ही अधिक महत्वपूर्ण है। अंतरराष्ट्रीय '1957-62) के अंतर्गत भी वायुमण्डल के विषय में महत्वपूर्ण शोधकार्य किए गए। अब तक प्राप्त वायुमण्डल की अनेक समानांतर परतों या स्तरों को उनके आधार पर वायुमण्डल के अध्ययन को दो विचारधाराओं में बांटा गया है—(1) सामान्य विचारधारा, और; (2) नवीन विचारधारा।

सामान्य विचारधाराः इस विचारधारा के अनुसार वायुमण्डल को गैस परतों में विभाजित किया जाता है। इस विभाजन का आधार वायुमण्डल में तापमान परतों का ऊर्ध्वाधर वितरण है। वायुमण्डल की प्रमुख परतें निम्नलिखित हैं—

(i) *क्षोभमण्डल* (Troposphere): वायुमण्डल की सबसे निचली परत का ऊर्ध्वाधर विस्तार जाता है। वायुमण्डल की संपूर्ण भार का 75 प्रतिशत पाया जाता है। क्षोभमण्डल है जिसमें वायुमण्डल के संपूर्ण भार का 75 प्रतिशत पाया जाता है। धरातल से इसकी ऊंचाई 14 कि.मी. मानी जाती है। ध्रुवों पर ऊंचाई घटती जाती है। क्षोभमण्डल की ऊंचाई (6 कि.मी.) की ओर जाने पर ऊंचाई घटती जाती है। क्षोभमण्डल को ट्रोपोस्फीयर शब्द की खोज *'तिसरां द बोर'* नामक अंतरिक्ष वैज्ञानिक ने की थी। ट्रोपोज (Tropos) ग्रीक भाषा का शब्द है, जिसका अर्थ होता है "मिश्रण एवं विक्षोभ"।

जलवायु और मौसम संबंधी प्रक्रियाओं की दृष्टि से यह परत विशेष महत्वपूर्ण है क्योंकि सभी मौसमी घटनाएं इसी परत में संपन्न होती हैं। इस मण्डल की सबसे प्रमुख विशेषता है—ऊंचाई में वृद्धि के साथ तापमान में गिरावट। इसमें ताप ह्रास दर 1°C प्रति 165 मीटर की है तथा इसे सामान्य ताप ह्रास दर कहते हैं।

क्षोभमण्डल में वायु विक्षोभ (Turbulence) एवं अस्थायी प्रबल वायु वेग (Gusts) भी पाये जाते हैं। वायुमण्डलीय जलवाष्प एवं धूलकणों के अधोमण्डल में ही संकेंद्रित होने के कारण बादल तथा तूफान आदि की उत्पत्ति इसी परत में होती है। वायुमण्डल के इस निचले स्तर को 'संवहनी मण्डल' भी कहते हैं।

क्षोभमण्डल के ऊपरी शीर्ष भाग पर स्थित 'संक्रमण स्तर', जो क्षोभमण्डल को समताप मण्डल से पृथक् करता है, 'क्षोभमण्डल सीमा' या 'ट्रोपोपॉज' कहलाता है, जिसका अर्थ है—मिश्रण की समाप्ति। यह एक संकरी तथा असमान मोटाई वाली परत है, जो सभी प्रकार के मेघों तथा तूफानों की एक वाह्य सीमा बनाती है तथा सभी प्रकार की संवहन धाराओं का यहां अंत हो जाता है। इसकी मोटाई 1 से 1.5 मीटर होती है।

(ii) *समताप मण्डल* (Stratosphere): इस मण्डल की शुरुआत ट्रोपोपाज से होती है। इसकी औसत ऊंचाई धरातल से 50 कि.मी. तक मानी जाती है। इसकी खोज भी *'तिसरां द बोर'* ने की थी। इसे स्तरण मण्डल (region of stratification) भी कहा जा सकता है क्योंकि स्ट्रेटोस्फीयर का शाब्दिक अ यही होता है। इस मण्डल की विशेष बात यह है कि इसमें ऊंचाई में वृद्धि साथ तापमान का नीचे गिरना समाप्त हो जाता है। इस परत के निचले हि में विभिन्न ऊंचाइयों पर एक समान तापमान पाया जाता है। इस मण्डल में जल- एवं धूल-कण लगभग नहीं पाए जाते हैं। अतः यहां बादलों का निर्माण नहीं है। पर कभी-कभी कुछ विशेष प्रकार के बादलों का निर्माण होता है जिन्हें मेघ (Mother of Pearl Clouds) कहते हैं।

धरातल से लगभग 30 कि.मी. की ऊंचाई पर समताप मण्डल सीम स्ट्रेटोपॉज की संक्रमण पेटी स्थित है, जिसके ऊपर से तापमान ऊंचाई तीव्र गति से ऊपर उठता है। यहां तापमान वृद्धि का कारण सूर्य की किरणों का अवशोषण करने वाली ओजोन गैस की उपस्थिति है। इस वायु की गति क्षैतिज रूप में पायी जाती है। स्ट्रैटोपॉज की सीमा पर स में ऊंचाई के साथ तापमान के बढ़ने की विशेषता समाप्त हो जा

क्षोभ सीमाः क्षोभमण्डल तथा समतापमण्डल को अलग क किमी. की पतली परत होती है जिसे क्षोभ सीमा कहते हैं।

(iii) *मध्यमण्डल* (Mesosphere): मध्यमण्डल समताप मध्य मण्डल सीमा (Mesopause) के नीचे 60 कि.मी. की ऊंच इस मण्डल को ओजोनमण्डल भी कहा जाता है। इस परत में रासा की प्रधानता के कारण कुछ वैज्ञानिक इसे 'केमोस्फीयर' भी इस मण्डल में ओजोन गैस की प्रधानता होती है। कुछ वैज्ञ मण्डल का ही ऊपरी भाग मानते हैं। इस स्तर में तापमान ऊंचाई

WWW.GRADESETTER.COM

WWW.GRADESETTER.COM

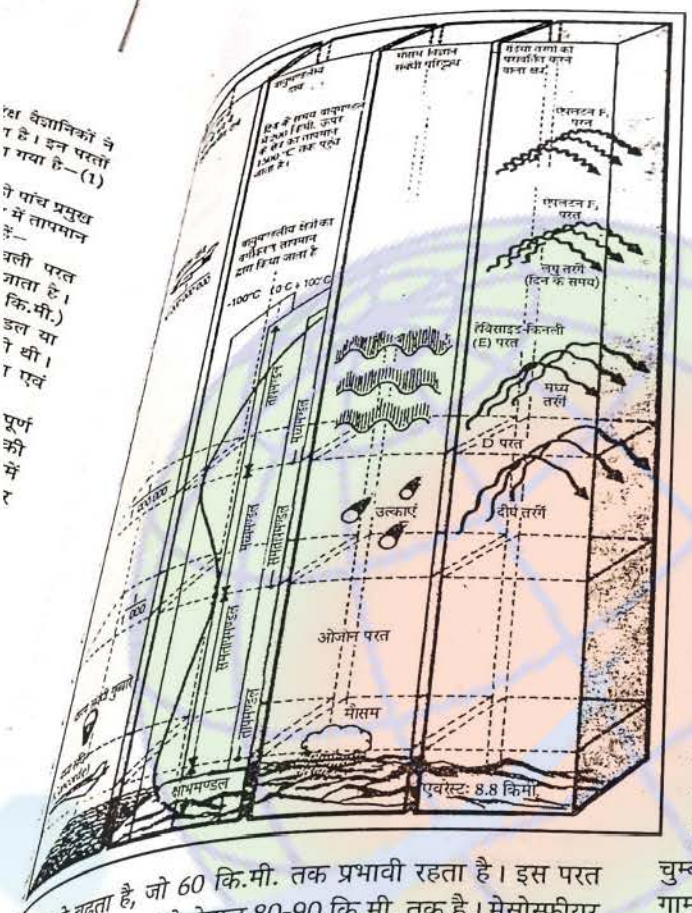

...ई दर से बढ़ता है, जो 60 कि.मी. तक प्रभावी रहता है। इस परत ...ंचाई पृथ्वी मण्डल सीमा या मेसोपाज 80-90 कि.मी. तक है। मेसोस्फीयर ...ंचाई के साथ तापमान घटता है (0° सेंटीग्रेड से - 100° सेंटीग्रेड ...ाओं का लम्बवत् प्रवाह यहां उतनी तेजी से नहीं होता, तथापि; ...स्से में उच्च अक्षांशों में गर्मियों में बर्फ स्वच्छ पारदर्शी निशादीप्त ...t clouds) का निर्माण होता है। इनके निर्माण के पीछे उल्का ...ic dust) की उपस्थिति केंद्रक का काम करती है।

...र (Thermosphere): मध्यमण्डल या मेसोपोज के ऊपर ...कहलाता है। यह मण्डल 80 किमी. से 400 किमी. तक ...ता है। तापमण्डल में तापमान बहुत तीव्रता से बढ़ता ...0° सेल्सियस ताप मिलता है। इस स्तर पर तापमान ...विक ऑक्सीजन (O) के द्वारा 0.2 माइक्रॉन से भी ...गनी किरणों का अवशोषण कर लेने की क्षमता के ...लघु तरंगों को सोखने के बाद दीर्घ तरंगों के रूप ...कर देती है।

...here): यह वायुमण्डल की सबसे ऊपरी परत है। ...मी. तक मानी जाती है। इतनी अधिक ऊंचाई ...ं हो जाता है। इतनी ऊंचाई पर वायु में सिर्फ ...प्रधानता रहती है।

क्रियाशील परतें

आयनमण्डल (आयनोस्फीयर): धरातल से 50 से 500 किमी. की ऊंचाई तक विस्तृत वायुमण्डल के भाग को आयनमण्डल कहते हैं। इस मण्डल में आयन की प्रधानता है। आकाश का नील वर्ण सुमेरू ज्योति, कुमेरू ज्योति एवं उल्काओं की चमक तथा ब्रह्माण्ड किरणों की उपस्थिति इस भाग की विशेषता है। आयनमण्डल रेडियो तरंगों को यहां से पृथ्वी की ओर लौटा देता है तथा पृथ्वी पुनः ऊपर भेज देती है और यह क्रिया तब तक चलती है जब तक तरंग कुछ दूर अपना स्थान ग्रहण नहीं कर लेती है।

ओजोन परतः यह परत वायुमण्डल में 20 से 80 किमी. के मध्य स्थित है जो चारों ओर से पृथ्वी को ढके रखती है। ओजोन गैस सूर्य से आने वाली तीक्ष्ण गर्म पराबैंगनी किरणों को बहुत जल्दी अपने में सोख लेती है, जिससे पृथ्वी की जलवायु तथा मानव जीवन पर उनका प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ता है।

ग्रीन हाउस प्रभावः वायुमण्डल में गैसों के असंतुलन से पृथ्वी द्वारा सूर्य की किरणों का अवशोषण अधिक मात्रा में होने लगता है, जिसके फलस्वरूप पृथ्वी तेजी से गर्म होने लगती है। ग्रह पर गैसों के जमाव के परिणामस्वरूप ऊर्जा के अंतरिक्ष में विलय न हो पाने के कारण वायुमण्डल के तापमान में वृद्धि होने को ग्रीन हाउस प्रभाव कहते हैं। सामान्य तौर पर ग्रीन हाउस शीशे का बना एक ऐसा घर होता है जिसमें पौधों को अधिक गर्मी से बचाने के लिए शीशे (कांच) का प्रयोग किया जाता है। पृथ्वी के लिए उसका वायुमण्डल 'ग्रीन हाउस' के कांच के रूप में कार्य करता है।

वायुमण्डल सूर्य के विकिरण की कम तरंगदैर्ध्य वाली किरणों को तो पृथ्वी पर आने देता है परंतु लंबी तरंगदैर्ध्य वाली किरणों को अवशोषित करके रोक लेता है। अवशोषित विकिरण वायुमण्डल से बाहर नहीं जा पाता है, बल्कि ऊष्मा के रूप में उपस्थित रहता है। जिन क्षेत्रों में कोयला तथा पेट्रोलियम पदार्थों को जलाने से कार्बन डाइऑक्साइड अधिक निकलती है वहां ग्रीन हाउस प्रभाव अधिक होता है। जहां इस प्रकार के पदार्थ कम जलाए जाते हैं वहां ग्रीन हाउस प्रभाव कम होता है।

विकिरण और ऊर्जा

विद्युत चुम्बकीय विकिरण की प्रकृति

विद्युत चुम्बकीय विकिरण शून्य (स्पेस) एवं अन्य माध्यमों से स्वयं-प्रसारित तरंग होती है। इसे प्रकाश भी कहा जाता है किंतु वास्तव में प्रकाश, विद्युत चुम्बकीय विकिरण का एक छोटा-सा भाग है। दृश्य प्रकाश, एक्स-किरण, गामा-किरण, रेडियो तरंगें आदि सभी विद्युत चुम्बकीय तरंगें हैं।

विद्युत चुम्बकीय विकिरण में ऊर्जा एवं संवेग भी होते हैं। जब ये तरंगें किसी पदार्थ से अनुक्रिया करती हैं तो पदार्थ के अणुओं को यह ऊर्जा और संवेग प्रदान करती हैं।

मानव की आंखें, विद्युत चुम्बकीय विकिरण के जिस भाग के प्रति संवेदनशील होती हैं उसे ***'दृश्य प्रकाश'*** (visible light) कहा जाता है। दृश्य प्रकाश की तरंग दैर्ध्य 4000 एंगस्ट्राम से 8000 एंगस्ट्राम तक होती है।

विकिरण की मात्रा और उसकी प्रकृति कुछ मूल नियमों से नियंत्रित होती है जो इस प्रकार हैं–

(i) सभी पदार्थ चाहे उनका तापमान कुछ भी हो, विकिरण ऊर्जा का उत्सर्जन करते हैं। इस प्रकार केवल सूर्य के समान तप्त पदार्थ ही नहीं बल्कि पृथ्वी भी, जिसमें इसके हिमाच्छादित क्षेत्र भी शामिल हैं; लगातार इस ऊर्जा का उत्सर्जन करती रहती हैं।

(ii) क्षेत्रफल को समान मानने पर, गर्म पदार्थ, ठण्डे पदार्थों की अपेक्षा अधिक ऊर्जा का विकिरण करते हैं। अतः सूर्य (सतह का तापमान 6,000 °C) पृथ्वी (सतह का औसत तापमान मात्र 15 °C) की तुलना में लाखों गुना अधिक ऊर्जा का उत्सर्जन करता है।

(iii) किसी पदार्थ का तापमान उस पदार्थ द्वारा उत्सर्जित तरंगों की लंबाई को भी निर्धारित करता है। जो पदार्थ जितना ही अधिक गर्म होगा उसके ऊ

WWW.GRADESETTER.COM

WWW.GRADESETTER.COM

तरंगों की लम्बाई उतनी ही कम होगी। यही कारण है कि सूर्य से विकिरण लघु तरंगों के रूप में होता है, जबकि भौमिक विकिरण अपेक्षाकृत लंबी तरंगों के रूप में होता है।

(iv) जो पदार्थ विकिरण के अवशोषक होते हैं वही उसके अच्छे उत्सर्जक भी होते हैं। पृथ्वी का धरातल सूर्यताप का एक अच्छा अवशोषक है। यह एक अच्छा उत्सर्जक भी है क्योंकि यह शत-प्रतिशत निपुणता के साथ विकिरण करता है।

सूर्यताप

सूर्य एक दहकता हुआ विशालकाय पिण्ड है जिससे विकरित संपूर्ण ऊष्मा को सौर विकिरण (solar radiation) कहा जाता है। पृथ्वी इस ऊष्मा का मात्र 2 अरबवां भाग प्राप्त कर पाती है, लेकिन सूर्यताप का यही सूक्ष्म अंश पृथ्वी की सभी भौतिक, जैविक एवं रासायनिक घटनाओं के लिए पर्याप्त है। यह सूक्ष्मांश भी लगभग 23 खरब अश्व शक्ति के बराबर है। सूर्य से विकीर्ण ऊर्जा का जो भाग पृथ्वी की ओर आता है उसे 'आतपन' या 'सूर्यताप' (insolation) कहते हैं। सूर्यताप की प्राप्ति विभिन्न लंबाइयों वाली तरंगों (wave lengths) या सूर्य रश्मियों के रूप में होती है। सूर्य के धरातल से ऊर्जा का विकिरण 2,97,600 कि.मी. (1,86000 मील) प्रति सेकैण्ड गति वाली विद्युत-चुम्बकीय तरंगों द्वारा होता है। सूर्यताप को प्रभावित करने वाले कारक निम्न हैं—

(i) सूर्य की किरणों का तिरछापन: सूर्य की किरणों के झुकाव में परिवर्तन, धरातल पर पहुंचने वाली ऊर्जा की मात्रा को दो प्रकार से प्रभावित करता है। *प्रथम,* जब सूर्य लगभग मध्याह्न में होता है तो इसकी किरणें धरातल पर लंबवत् पड़ती हैं और इसलिए अधिक संकेंद्रित होती हैं। अतः सूर्यताप की तीव्रता भी अधिक होती है। *दूसरी,* जब ये किरणें धरातल पर तिरछी पड़ती हैं तो अधिक क्षेत्र में फैल जाती हैं और सूर्यताप की तीव्रता कम हो जाती है।

(ii) सौर विकिरण की अवधि अथवा दिन की अवधि: दिन की लंबाई में ऋतु और अक्षांश के अनुसार परिवर्तन होता रहता है जो भूतल द्वारा ऊष्मा ग्रहण की मात्रा को निर्धारित करता है। वास्तव में किरणों के झुकाव का कोण (आपतन कोण) और दिन की लंबाई, दोनों मिलकर पृथ्वी के धरातल पर सूर्यताप के वितरण को नियंत्रित करते हैं।

(iii) पृथ्वी से सूर्य की दूरी: पृथ्वी अण्डाकार कक्ष के सहारे सूर्य की परिक्रमा करती है, जिस कारण उसकी सूर्य से दूरी में परिवर्तन होता रहता है। औसत रूप में पृथ्वी सूर्य से 93,000,000 मील दूर है, परंतु निकटतम दूरी 91,500,000 मील है। इस स्थिति को उपसौर (perihelion) कहते हैं। यह स्थिति 3 जनवरी को होती है। इसके विपरीत 4 जुलाई को अपसौर (aphelion) की स्थिति होती है, जबकि पृथ्वी, सूर्य से 94,500,000 मील (152 मिलियन कि.मी.) दूर होती है।

(iv) वायुमण्डल का प्रभाव: सूर्यताप पर वायुमण्डल की स्वच्छता अथवा अस्वच्छता का भी काफी प्रभाव पड़ता है। वायुमण्डल को पार करते समय सौर विकिरण का कुछ अंश जल-वाष्प अथवा गैसों के द्वारा सोख लिया जाता है। वायुमण्डल की निम्न पर्तों में आर्द्रता की मात्रा जितनी ही अधिक होती है, विकिरण का उतना ही अधिक अवशोषण होता है। अतः आर्द्र प्रदेशों की अपेक्षा शुष्क प्रदेशों को अधिक सूर्यताप की प्राप्ति होती है।

(v) सौर कलंक: सूर्य-तल पर भी चंद्रमा के समान कलंक या धब्बे मिलते हैं। यह स्थायी रूप में नहीं पाये जाते, लेकिन ये बनते-बिगड़ते रहते हैं तथा इनकी संख्या घटती-बढ़ती रहती है। यह अंतर चक्रीय रूप में सम्पन्न होता है। औसत रूप में एक चक्र 11 वर्ष में पूरा होता है। जब सौर कलंकों की संख्या अधिक हो जाती है तो सूर्यताप की मात्रा भी अधिक हो जाती परंतु इनकी मात्रा में कमी हो जाने के कारण प्राप्त होने सूर्यताप कम हो जाता है।

सूर्य : तथ्य एक दृष्टि में

• आकाश गंगा	—	मिल्की वे
• द्रव्यमान	—	2×10^{27} (सम्पूर्ण सूर्य मण्डल का 99.85%)
• परिभ्रमण अवधि	—	250 मिलियन वर्ष
• घूर्णन काल	—	25 वर्ष
• आयु	—	5 बिलियन वर्ष
• संघटन	—	H_2 (71%), He (26.5%), अन्य (2.5%)
• तापमान	—	फोटोस्फीयर (सतह) 6000 °C क्रोमोस्फीयर 32400 °C कोरोना 2,700,000 °C कोर 15 मिलियन डिग्री C
• पृथ्वी से औसत दूरी	—	150 मिलियन किमी.
अपहेलियन	—	152 "
पेरीहेलियन	—	147 "
• औसत घनत्व	—	1.41
• व्यास	—	13,82,400 किमी.
• सौर पवनें	—	कोरोना से प्रोट्रान का प्रवाह, जो कि प्लाज्मा द्वारा निर्मित है
• सौर कलंक	—	11 वर्ष के अंतराल में निर्मित
• सौर उत्कर्ष	—	हाइड्रोजन का वायुमण्डल

सौर विकिरण का वायुमण्डलीय अपक्षय: सौर विकिरण को धरातल पर पहुंचने के क्रम में वायुमण्डल का मोटा और घना आवरण पार करना पड़ता है। अतः, ऐसे में सूर्य किरणों के पथ की लम्बाई जितनी अधिक होगी, सूर्यताप उतना ही कम प्राप्त होगा। सूर्यताप में इसी कमी या कटौती को सौर विकिरण का वायुमण्डलीय अपक्षय कहते हैं। अपक्षय की यह क्रिया वायुमण्डल के विभिन्न तत्वों द्वारा सौर विकिरण के प्रकीर्णन, विसरण, अवशोषण तथा परावर्तन के कारण होती है, जो निम्न प्रकार से हैं:

(i) प्रकीर्णन (scattering): आकाश का नीला रंग और लाल रंग सूर्योदय के कारण दिखता है। विभिन्न तरंग दैर्ध्य (wave length) की सौर किरणें जब गैसीय कणों और जल कणों से जब गुजरती हैं, तब अगर इन कणों का व्यास किरणों के तरंग दैर्ध्य से छोटा होता है, तो लघु तरंगों (आसमानी, बैंगनी रंग) का प्रकीर्णन हो जाता है, जबकि दीर्घ लाल तरंग आगे बढ़ जाती है, फलतः आकाश का रंग नीला दिखता है। सूर्योदय और सूर्यास्त के समय जब सौर किरणों को अधिक मोटी वायु परत से होकर गुजरना करनी पड़ती है, तब यही प्रक्रिया विपरीत तरह से होती है और आकाश का रंग लाल दिखता है।

धरातल पर सूर्य की किरणों के गिरने का कोण तथा दिन के प्रकाश की

अक्षांश	21 सितंबर अथवा 21 मार्च		21 जून		22 दि
	प्रकाश की अवधि	किरणों का कोण	प्रकाश की अवधि	किरणों का कोण	प्रकाश की अवधि
90° उ.	12 घंटे	0°	24 घंटे	23°30′	0
66°30′ उ.	12 घंटे	23°30′	24 घंटे	47°	0
50° उ.	12 घंटे	40°	16 घंटे 18 मिनट	63°30′	7 घंटे 42
23°30 उ.	12 घंटे	66°30	13 घंटे 27 मिनट	90°	10 घंटे 3
0°	12 घंटे	90°	12 घंटे	66°30′	12 घंटे
23°30′ द.	12 घंटे	66°30′	10 घंटे 33 मिनट	43°	13 घंटे
50° द.	12 घंटे	40°	7 घंटे 42 मिनट	16°30′	16 घंटे
66°30′ द.	12 घंटे	23°30′	0	0°	24 घं
90° द.	12 घंटे	0°	0	0°	24 घं

संकेत: उ. = उत्तरी, द. = दक्षिणी

कोणीय माप— 1° = 60′ (एक अंश = 60 मिनट)

1° = 60″ (1 मिनट = 60 सेकेंड)

WWW.GRADESETTER.COM

WWW.GRADESETTER.COM

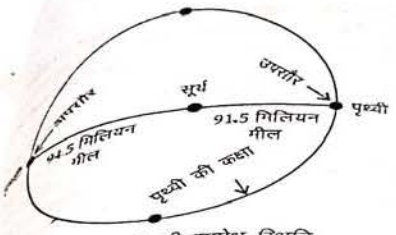

सूर्य तथा पृथ्वी की सापेक्ष स्थिति

...(diffusion): जब आपतित किरणों के मार्ग में ऐसे अणु या ..., जिनका व्यास प्रकाश की किरणों के तरंग-दैर्ध्य से बड़ा होता ... तरंगें (छोटी या बड़ी) इधर-उधर परावर्तित हो जाती हैं। इस ... का विसरण कहते हैं। यह प्रक्रिया अवरणात्मक (non-... होती है, इसलिए प्रकाश के विविध अवयव रंग अलग-अलग नहीं ...

...अवशोषण (absorption): सिर्फ ऑक्सीजन (0.26 माइक्रॉन लघु ... (15 माइक्रॉन की लघु तरंग) तथा ओजोन गैस परावैंगनी लघु तरंगों ... करती हैं। गैसों के स्थान पर जलवाष्प सूर्यताप का सबसे बड़ा ... है। यह लघु तरंगों के लिए पारदर्शक तथा दीर्घ तरंगों के लिए अपारदर्शक ...

...परावर्तन (reflection): प्रकाश की किरणों के कुछ भाग का धरातल ... दी जाता है। परावर्तन की मात्रा धरातल के चिकनेपन पर निर्भर करती ... की सबसे अधिक बादलों की मात्रा प्रभावित करती है। पूर्ण मेघाच्छादित ... से सूर्य के प्रकाश में कमी का मूल कारण परावर्तन होता है, न कि ...

...संतुलन
...ऊष्मा का सर्वाधिक भाग सूर्य से प्रत्यक्ष रूप में प्राप्त होता है। सूर्य से ... विकीर्ण होती है, उसे *लघु तरंग सौर्यिक विकिरण* कहते हैं। वायुमण्डल ... में सूर्य की विकीर्ण ऊर्जा का मात्र 14 प्रतिशत अंश ही प्राप्त कर पाता ... धरातल की अधिकांश ऊष्मा पृथ्वी से विकीर्ण ऊर्जा द्वारा प्राप्त होती है। ... होने वाला विकिरण दीर्घ तरंगों के रूप में होता है, जिसे *दीर्घ तरंग विकिरण* कहते हैं।

...या वायुमण्डल के ऊष्मा भण्डार में हमेशा संतुलन की स्थिति रहती ... जितनी ऊष्मा सूर्य से प्राप्त करते हैं, उतनी ही मात्रा को बाद में ... देते हैं।

...नांतरण

...की तीन विधियां हैं—चालन, संवहन और विकिरण।

...nduction): यह ऊष्मा संचार की वह विधि है जिसके माध्यम ... भागों की ओर ऊष्मा का संचार होता है। इसमें ऊष्मा एक ... नहीं कणों के माध्यम से गंतव्य तक पहुंचती है। इसमें वस्तु ... नहीं होता है सिर्फ ऊष्मा का स्थानांतरण होता है।

...vection): इसमें ऊष्मा का संचार केवल तरल अथवा ... तरल अथवा गैस के कण गर्म होकर स्वयं विस्थापित ...दार्थ के विभिन्न भागों में पहुंचा देते हैं। अतः, माध्यम ...र संवहन धाराएं उत्पन्न होती हैं।

...ation): विकिरण में ऊष्मा गरम वस्तु से ठंडी वस्तु ... के तथा बिना माध्यम को गरम किए ही संचरित ...

...ती है, जैसे—सूर्य और पृथ्वी के बीच निर्वात है फिर भी सूर्य किरणें पृथ्वी तक पहुंचती हैं। यह प्रक्रिया विकिरण कहलाती है।

पृथ्वी का ऊष्मा बजट

पृथ्वी ताप-संतुलन को बनाए रखने हेतु जितना सूर्यताप प्राप्त करती है, उतना ही वापस भी कर देती है। ऊष्मा का इस प्रकार का परिवहन (आना-जाना) विकिरण बजट या ताप बजट कहलाता है। इस ताप बजट व्यवस्था के अंतर्गत कुल सौर विकिरण का 35 प्रतिशत भाग अंतरिक्ष में वापस लौट जाता है, जिसमें 27 प्रतिशत का बादलों के द्वारा परावर्तन हो जाता है, 6 प्रतिशत वायुमण्डल में प्रकीर्ण हो जाता है जबकि बचा हुआ 2 प्रतिशत धरातल से परावर्तन द्वारा वापस अंतरिक्ष में लौट जाता है। सौर विकिरण की इस मात्रा (35 प्रतिशत) को 'एल्बिडो' कहा जाता है। दूसरी तरफ, बाकी 65 प्रतिशत में से 14 प्रतिशत का वायुमण्डल के जलवाष्प तथा गैसों द्वारा शोषण कर लिया जाता है। इस प्रकार कुल 51 प्रतिशत ऊष्मा पृथ्वी को प्राप्त होती है। 51 प्रतिशत में से 34 प्रतिशत ऊष्मा प्रत्यक्ष सूर्य से प्राप्त होती है, जबकि बची हुई 17 प्रतिशत ऊर्जा विसरित दिव्य प्रकाश से प्राप्त होती है। वस्तुतः पृथ्वी को प्राप्त होने वाली 51 प्रतिशत ऊष्मा ही पृथ्वी का वास्तविक ताप-बजट है।

अक्षांशीय ऊष्मा-संतुलन

पृथ्वी पर अक्षांशीय ताप-संतुलन ऊष्मा के स्थानांतरण द्वारा संभव हो पाता है। इसके जिम्मेदार दो कारक हैं—*पहला*, वायु परिसंचरण तंत्र और *दूसरा* महासागरीय जल धाराएं, जिनके कारण असमान तापमान वाले कटिबंधों के बीच लगातार ऊष्मा का स्थानांतरण और आदान-प्रदान होता रहता है। इसी कारण 35°-40° अक्षांश से लेकर 0° अक्षांश पर सौर विकिरण से ऊर्जा क्षति की तुलना में ऊर्जा प्राप्ति ज्यादा होती है, जबकि 40° से 90° अक्षांशों तक ऊर्जा प्राप्ति की तुलना में क्षति अधिक होती है पर अक्षांशीय ताप संतुलन प्रक्रिया के द्वारा उष्ण कटिबंधों के तापमान में न तो लगातार वृद्धि होती है न ही ध्रुवों के तापमान में कमी होती है फलतः ताप-संतुलन बना रहता है।

द्विवार्था के अनुसार 75% ऊष्मा का स्थानांतरण पवनों के द्वारा एवं 25% महासागरीय जल धाराओं के द्वारा होता है।

वायु तापमान

पृथ्वी को प्राप्त होने वाले ताप का स्रोत सूर्य है। अन्य तारों या आकाशीय पिण्ड या स्वयं पृथ्वी के भीतर से प्राप्त ऊष्मा पृथ्वी पर जीवन के विकास या जलवायु की दृष्टि से महत्वहीन है। ऊर्जा या ऊष्मा विभिन्न प्रकार के रेडियो सक्रिय पदार्थों के विघटन से भी प्राप्त होती है, पर इस प्रकार से वायुमण्डल को प्राप्त ऊष्मा महत्वपूर्ण नहीं है। अनुमान है कि सौर ऊर्जा के अभाव में धरातल का तापमान—459.6° फॉरेनहाइट होता।

तापमान ऊष्मा की तीव्रता यानी तृप्तता की मात्रा का माप है। अतः ये दोनों शब्द दो भिन्न अवधारणाओं के द्योतक हैं। तो भी ये दोनों एक-दूसरे से संबंधित है क्योंकि तापमान के बढ़ने और घटने के लिए क्रमशः उष्मा की प्राप्ति और उसका ह्रास आवश्यक है। इसके अतिरिक्त तापमान में अंतर ऊष्मा संचार की दिशा को निर्धारित करता है।

दिन में पृथ्वी, सूर्य से ऊर्जा प्राप्त करती है जिसका ऊष्मा में रूपांतर होत रहता है। दिन में 12 बजे पृथ्वी सर्वाधिक ऊर्जा प्राप्त करती है, परंतु उस स अधिकतम तापक्रम नहीं हो पाता है, क्योंकि ऊर्जा के ऊष्मा में रूपांतरित के कारण 6 बजे प्रातः से 2 से 4 बजे दिन तक तापक्रम का वक्र सतत जाता है और अधिकतम तापक्रम 2 बजे से 4 बजे दिन के बीच प्राप्त हो इसे दिन का उच्चतम-तापक्रम कहते हैं। इस प्रकार न्यूनतम तापक्रम 12 बजे न होकर 4 एवं 5 बजे के आसपास (सुबह) होता है। इसे दिन का तापक्रम कहते हैं।

उच्चतम तथा न्यूनतम तापक्रमों के अंतर को 'तापांतर' कहा जा के उच्चतम तथा न्यूनतम ताप का अंतर दैनिक तापांतर, महीने के उ न्यूनतम ताप के अंतर को *मासिक तापांतर* तथा वर्ष के अधिकतम ताप के अंतर को *वार्षिक तापांतर* कहते हैं।

WWW.GRADESETTER.COM

WWW.GRADESETTER.COM

वायु में तापमान को प्रभावित करने वाले कारक निम्न हैं—

(i) अक्षांश: तापक्रम सूर्यताप (insolation) पर आधारित होता है। भूमध्य-रेखा पर सूर्य की किरणों के ठीक लम्बवत् पड़ने के कारण तथा रात-दिन की समान अवधि के कारण यहां सर्वाधिक सूर्यताप प्राप्त होता है, जिस कारण तापक्रम भी अधिक हो जाता है। भूमध्य-रेखा से ध्रुवों की ओर चलने पर बढ़ते अक्षांशों के साथ दिन की अवधि अधिक होने पर भी सूर्य की किरणों के अधिक तिरछेपन के कारण सूर्यताप घटता जाता है। इस प्रकार भूमध्य-रेखा से ऊंचे अक्षांशों का औसत तापक्रम कम हो जाता है, परंतु अधिकतम सूर्यताप प्राप्त करने वाली भूमध्य-रेखा पर अधिकतम तापक्रम न होकर जुलाई में 20° उ. अक्षांश पर होता है। इसे तापीय विषुवत रेखा कहते हैं।

(ii) ऊंचाई: वायुमण्डल विशेष रूप से नीचे से ऊपर की ओर गर्म होता है। इसलिए हवा की सबसे निचली पर्त, जो धरातल के संपर्क में रहती है, सबसे अधिक गर्म होती है। जैसे-जैसे ऊपर जाते हैं तापमान क्रमशः घटता जाता है और हवा ठंडी होती जाती है। तापमान की यह सामान्य हास दर सामान्यतः प्रति 165 मीटर की ऊंचाई पर लगभग 1° से. होती है। इस दर में दिन के समय, मौसम तथा स्थान की विभिन्न स्थितियों के अनुसार भी परिवर्तन होते हैं।

(iii) जल एवं स्थल का वितरण: स्थल भाग, प्राप्त सूर्यताप से महासागर की अपेक्षा अधिक शीघ्र और अधिक मात्रा में गरम हो जाते हैं। इसी प्रकार ताप विकिरण के द्वारा जल की अपेक्षा स्थल शीघ्र शीतल हो जाता है। जल और स्थल की इस विशेषता का तापक्रम के वितरण पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है।

(iv) महासागरीय धाराएं: समुद्री धाराएं निकटवर्ती स्थलीय क्षेत्रों के तापमान को काफी हद तक प्रभावित करती हैं। गर्म धाराएं समुद्रतटीय क्षेत्रों के तापमान को बढ़ाती हैं और ठंडी धाराएं उन्हें कम करती हैं।

(v) प्रचलित पवनें एवं वायु राशियां: पवनाभिमुख समुद्रतटों पर महासागरों का बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है। अतः यहां गर्मी का मौसम अपेक्षाकृत अधिक ठंडा और जाड़े का मौसम साधारण ठंड वाला होता है।

(vi) पर्वतीय अवरोध: किसी स्थान के तापमान पर पर्वत श्रेणियों का महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। अत्यधिक शीतल वायु राशियों को पर्वतमालायें किसी प्रदेश विशेष में प्रवेश करने से रोक कर उसके तापमान को नीचे गिरने से बचाती हैं। यूरोप में ध्रुवीय वायु राशियों को आल्प्स की पर्वतमालायें रोक लेती हैं और उसके दक्षिणी राज्यों, जैसे—उत्तरी इटली की मध्य यूरोप की शीत से रक्षा करती हैं। उसी प्रकार एशिया महाद्वीप में स्थित हिमालय मध्य एशिया की शीतकाल ठण्डी हवाओं को रोक लेता है, जिससे उसके दक्षिण में स्थित भू-भागों में शीत ऋतु का तापक्रम बहुत नीचे नहीं गिरने पाता। वायुमण्डलं का ऊष्मन एवं शीतलन निम्नांकित विधियों द्वारा संपन्न होता है:

तापमान का क्षैतिज वितरण: क्षैतिज वितरण का अर्थ है—अक्षांश के अनुसार तापमान का वितरण। समताप रेखाओं द्वारा दिखाया जाता है। समताप रेखाएं, वे क्षैतिज रेखाएं हैं, जो ग्लोब या मानचित्र पर एकसमान तापमान वाले स्थानों को मिलाकर खींची जाती हैं। समताप रेखायें किसी भी स्थान के वास्तविक तापमान ो नहीं प्रदर्शित करती हैं अपितु वे किसी स्थान का समुद्र तल पर अनुमानित क्रम ही प्रदर्शित करती हैं। चूंकि वास्तविक तापमान ऊंचाई इत्यादि से प्रभावित है, अतः इस प्रभाव से मुक्त रखने के लिए किसी स्थान विशेष की ऊंचाई मान में समुद्र तल के आधार पर संशोधन कर लिया जाता है। उल्लेखनीय ति 165 कि.मी. की ऊंचाई पर 1° सेंटीग्रेड तापमान घट जाता है।

नवरी का औसत तापमान: जनवरी उत्तरी गोलार्द्ध का सबसे ठंडा महीना ा गोलार्द्ध का सबसे गर्म महीना है। जनवरी, जुलाई की तरह ग्लोब चरम सीमाओं (seasonal extremes) को दर्शाता है। जनवरी में पमान क्रमशः उत्तरी-पूर्वी साइबेरिया और ग्रीनलैंड में दर्ज किया जाता र्द्ध में महाद्वीपों से आने वाली समताप रेखाएं भू-मध्य रेखा की ' हैं जिससे पता चलता है कि स्थल के भीतरी भागों तक शीत समताप रेखाएं काफी पास-पास मिलती हैं, जो तीव्र ताप-प्रवणता

दूसरी तरफ दक्षिणी गोलार्द्ध में समताप रेखाएं दूर-दूर और समान प्राप्त होती हैं। ऐसा द. गोलार्द्ध में महासागरों का निर्बाध विस्तार होने है। धरातल पर सर्वोच्च तापमान 30° दक्षिणी अक्षांश के निकट महासा जाता है।

जुलाई का औसत तापमान: इस माह में समताप रेखायें दक्षिणी में जनवरी की तरह महासागरों पर सीधी होती हैं लेकिन स्थलीय रेखा की ओर मुड़ जाती हैं, पर जनवरी की तुलना में दूर-दूर होती उत्तरी गोलार्द्ध में बहुत चक्र और अनियमितता प्राप्त होती हैं। गोलार्द्ध में ग्रीष्म ऋतु का समय होता है। उच्च तापमान 32.2° आस-पास की एक लम्बी पट्टी अफ्रीका और दक्षिण-पश्चिम एशिया भारत तक विस्तृत हो जाती है।

तापक्रम का प्रादेशीय वितरण: प्राचीन ग्रीक विचारकों के अनुसार: का प्रादेशिक वितरण वास्तव में क्षैतिज वितरण ही होता है, परंतु ग्लोब की दृष्टि से कुछ ऐसे विशेष प्रदेशों या मण्डलों में विभक्त कर तापक्रम का वितरण तथा उनकी विशेषताएं लगभग समान होती हैं। पर प्राचीन ग्रीक विद्वानों ने ग्लोब को प्रमुख कटिबंधों में विभाजित किया

(i) उष्ण कटिबंध: भूमध्य रेखा के दोनों ओर 23½° अक्षांशों तक भाग को उष्ण कटिबंध कहते हैं। भूमध्य रेखा के आसपास वाले भाग में भर ऊंचा तापक्रम रहने के कारण शीत ऋतु नहीं होती है।

(ii) शीतोष्ण कटिबंध: इसका विस्तार दोनों गोलार्द्धों में 23.5° तथा 66.5° अक्षांशों के बीच पाया जाता है। सूर्य के उत्तरायण तथा दक्षिणायन की स्थिति के कारण ऋतुओं के तापक्रम में बहुत अंतर पाया जाता है।

(iii) शीत कटिबंध: दोनों गोलार्द्धों में 66½° से ध्रुवीय केंद्रों तक कटिबंध का विस्तार है। इस कटिबंध में सूर्य की किरणों के अत्यधिक तिरछेपन के कारण तापक्रम नीचा ही रहता है। यहां पर सूर्य कभी भी लम्बवत् नहीं पाता है।

सूपन के अनुसार: ग्रीक विचारकों ने तापक्रमीय कटिबंधों के निर्धारण में अक्षांशों को आवश्यकता से अधिक महत्व प्रदान कर दिया था। तापक्रम के वितरण पर स्थल तथा जल के विषय स्वभाव, प्रचलित पवन, सागरीय धाराओं आदि का भी अधिक प्रभाव होता है। सूपन ने इन कारकों को ध्यान में रखकर तापक्रम के कटिबंधों का निर्धारण समताप रेखाओं के आधार पर किया है। उष्ण कटिबंध की सीमा का निर्धारण 20° से. की वार्षिक समताप रेखा द्वारा किया जाना चाहिए। उत्तरी गोलार्द्ध में शीतोष्ण तथा शीत कटिबंधों का निर्धारण जुलाई की 10° की समताप रेखा द्वारा किया जाता है।

कालांतर में सूपन की विधि में भी संशोधन किया गया तथा ग्लोब को विभिन्न तापक्रम के कटिबंधों में विभाजित किया गया:

(i) उष्ण कटिबंध (ii) उपोष्ण कटिबंध

(iii) शीतोष्ण कटिबंध (iv) शीत कटिबंध

तापमान का सामान्य प्रादेशिक वितरण: प्राचीन ग्रीक विद्वानों ने की दृष्टि से संपूर्ण ग्लोब को प्रमुख कटिबंधों में विभाजित किया है—

(i) विषुवत् रेखीय कटिबंध: दोनों गोलार्द्धों में 0° से लेकर 5° अ इस कटिबंध का विस्तार है। यहां वर्ष भर तापक्रम ऊंचा रहता है व की किरणें वर्ष भर लम्बवत् प्राप्त होती हैं। वायुमण्डल में हमेशा आ रहती है, फलतः वातावरण अस्वास्थ्यकर होता है।

(ii) अंतरा उष्ण कटिबंध: 5° से 12° अक्षांश तक दोनों गो कटिबंध का विस्तार है। यहां भी वर्ष भर ऊंचा तापमान प्राप्त होत गर्मी-सर्दी ऋतु में अंतर पता चलता है।

(iii) उष्ण कटिबंध: 12° से 25° अक्षांशों के बीच दोनों गो प्रसार है। यहां पृथ्वी का उच्चतम तापमान प्राप्त होता है। वर्ष कम से कम 18.5° से.ग्रेड तापमान अवश्य पाया जाता है।

WWW.GRADESETTER.COM

WWW.GRADESETTER.COM

तापमान का लम्बवत् वितरण एवं परिवर्तनः क्षैतिज वितरण में जिस प्रकार विषुवत रेखा से ध्रुवों की ओर तापमान घटता जाता है ठीक उसी प्रकार धरातल से जैसे-जैसे ऊंचाई में वृद्धि होती है तापमान घटने लगता है। वायुमण्डल में ऊंचाई पर कम तापमान पाया जाना इस बात को भी प्रमाणित करता है कि वायुमण्डल की ऊष्मा का प्रत्यक्ष स्रोत पार्थिव विकिरण है न कि सूर्यातप। ऊंचाई-वृद्धि के साथ तापमान में कमी वायुमण्डल में एक निश्चित सीमा तक ही जारी रहती है। उस सीमा के बाद तापमान में कमी रुक जाती है। तापमान में कमी वाली प्रक्रिया क्षोभमण्डल में ही सम्पन्न होती है। वायुमण्डल में धरातल से ऊपर की ओर तापमान में कमी की दर को तापमान की ऊर्ध्वाधर प्रवणता (vertical temperature gradient) कहते हैं। इसे ताप-ह्रास दर या लैप्स रेट भी कहते हैं। तापमान के लम्बवत् वितरण संबंधी कुछ मुख्य तथ्य इस प्रकार हैं:

- प्रत्येक अक्षांश पर क्षोभ मण्डल में सभी ऊंचाईयों पर तापमान-ह्रास की दर लगभग समान होती है।
- ट्रोपोपाज अर्थात् क्षोभमण्डल की बाहरी सीमा पर तापमान में कमी की दर अचानक शून्य हो जाती है। इस प्रकार ट्रोपोपॉज पर 'नॉर्मल लेप्स रेट' दर में अचानक बदलाव आ जाता है।
- समताप मण्डल के निचले हिस्से में हर ऊंचाई पर तापमान समान होता है; अर्थात् उसमें किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं आता है।
- समताप मण्डल में भूमध्य रेखा से ध्रुवों की तरफ तापमान प्रत्येक स्तर पर बढ़ता जाता है, क्योंकि समताप मण्डल की ऊंचाई विषुवत् रेखा की अपेक्षा ध्रुवों पर कम होती है।

तापमान की व्युत्क्रमणता (Inversion of Temperature)

ऊंचाई के साथ तापमान ह्रास के सामान्य नियम के विरुद्ध जब वायुमण्डल की कुछ परतों में ऊंचाई बढ़ने के साथ तापमान में भी वृद्धि होने लगती है, तो इसे तापमान की विलोमता या व्युत्क्रमणता कहा जाता है। यह परिघटना तापमान के लम्बवत् प्रवणता (vertical temperature gradient) के उलटी (inverted) होती है। इसमें ठण्डी हवा पृथ्वी के धरातल के निकट तथा गरम वायु उससे ऊपर पायी जाती है।

तापमान की विलोमता के लिए आदर्श दशाएं शीतकालीन लंबी रातें, मेघरहित आकाश या उच्च स्तरीय मेघ, शुष्क वायु, प्रशांत वायुमण्डल और हिमाच्छादित धरातल हैं। शीत ऋतु की शर्तें तापमान विलोमता के लिए सबसे आदर्श होती हैं विशेषकर पहाड़ी क्षेत्रों में। वैसे तापमान की व्युत्क्रमणता शीतकाल में महाद्वीपों में तथा ग्रीष्मकाल में महासागरों के ऊपर पायी जाती है। शीतऋतु की लंबी रातों में पर्वतों के ढाल विकिरण के कारण बहुत अधिक ठण्डे हो जाते हैं, फलतः उनसे सटी वायु परत भी ठण्डी हो जाती है। उसी ऊंचाई पर ढालों से दूर की हवा अपेक्षाकृ गरम होती है। रात में ठंडी हवा आकाश के स्वच्छ साफ बादल रहित होने दशा में गुरुत्वाकर्षण के प्रभाव के कारण ढालों से खिसक कर घाटी में पहुंच ज है जबकि ढालों से दूर की अपेक्षाकृत गरम हवा ढालों पर आ जाती हैं। फ नीचे घाटी में ठण्डी हवा और ऊपर ढालों पर गरम हवा का विस्तार हो जात इसी भौगोलिक कारण से पर्वतीय शहर अक्सर घाटियों में नहीं वरन् ढा बसे होते हैं। साथ ही पाले से रक्षा हेतु पर्वतीय कृषि भी ऊंचाई वाले ढ ही की जाती है।

तापमान विसंगति (thermal anomaly): किसी स्थान तथा उस के औसत तापमान के अंतर को तापमान विसंगति कहते हैं। अर्था समय में किसी स्थान विशेष के औसत तापमान तथा उसी स्थान औसत तापमान के अंतर को तापमान विसंगति के अंतर्गत रखा ज विसंगति का कारण ग्लोब पर जल और स्थल का असमान वितरण है उत्तरी गोलार्द्ध पर जहां स्थल अधिक हैं, तापमान विसंगति अधि है, जबकि दक्षिणी गोलार्द्ध में जल विस्तार अधिक होने के कारण कम प्राप्त होती है।

WWW.GRADESETTER.COM

WWW.GRADESETTER.COM

5. वायुमण्डलीय एवं महासागरीय परिसंचरण

वायुदाब

पृथ्वी के धरातल से ऊपरी ऊंचाई तक हवा का एक आवरण है जिसके पृथ्वी द्वारा गुरुत्वाकर्षण शक्ति के कारण वायुमण्डल पृथ्वी से सम्बद्ध रहता है, अर्थात् यह विलग न होकर उसके साथ ही घूमता है। यह गुरुत्वाकर्षण शक्ति ही वायुमण्डल, दाबजनित, तेजी का विकास है जिसके कारण इसमें भी आकर्षित है। यह वायु भारयुक्त होता है। इसका अनुभव हमें उसके ऊपर से ही अध्ययन हो जाने के कारण नहीं होता है। पृथ्वी की एक निश्चित इकाई या सेक्टर्स पर वायुमण्डल की सभी परतों द्वारा पड़ने वाले दबाव को वायुदाब कहा जाता है। वायुमण्डलीय दाब पृथ्वी के धरातल की तुलना में समुद्र तल पर अधिक पाया जाता है। वास्तव में वायुमण्डलीय दबाव का अर्थ है–किसी भी दिए गए स्थान और समय पर वहां की हवा के स्तंभ का भार। यह दबाव एक यंत्र से मापा जाता है जिसे वायुदाब मापी या बैरोमीटर कहा जाता है।

वायुदाब माप की इकाई मिलीबार है। एक मिलीबार एक वर्ग सेंटीमीटर पर एक ग्राम भार के बल के बराबर होता है। समुद्रतल पर सामान्य वायुमण्डलीय दाब लगभग 76 सेंटीमीटर या 1,013.25 मिलीबार की ऊंचाई के साथ गैसों का घनत्व कम इस औसत से ऊपर-नीचे होता रहता है। ऊंचाई के साथ वायुमण्डल का होता जाता है। धरातल से लगभग 5550 मीटर की ऊंचाई से वायुमण्डल आधा भार निहित होता है। शेष आधा वायुमण्डलीय भार इस ऊंचाई से वायुमण्डल की बाहरी सीमा तक पाया जाता है। परंतु, ऊंचाई के साथ वायुमण्डलीय दाब में कमी की दर हमेशा एकसमान नहीं होती है। ऊंचाई के साथ दाब में कमी आने के कारण जल का क्वथनांक बिंदु भी कम हो जाता है। प्रति 300 मीटर पर जल का क्वथनांक 1° सेल्सियस कम हो जाता है। अतः पहाड़ों पर पानी मैदानों की तुलना में जल्दी उबलने लगता है, जबकि खाना पकाने में अधिक समय लगता है।

वायुदाब परिवर्तन

पृथ्वी पर किसी भी स्थान का वायुदाब हमेशा एक समान नहीं रहता है। इसमें लगातार परिवर्तन और बदलाव होता रहता है। वायुदाब में परिवर्तन को तीन शीर्षक के अंतर्गत रखा जा सकता है। दैनिक, अनियमित दैनिक तथा वार्षिक वायुदाब परिवर्तन।

(i) दैनिक वायुदाब परिवर्तनः चौबीस घण्टे की दिन-रात की अवधि में दो बार वायुदाब ज्ञात किया जाता है। प्रायः प्रतिदिन प्रातः 10 बजे तथा रात्रि 10 बजे, यह उच्चतम तथा निम्नतम वायुदाब को दर्शाता है। वायुदाब के इस प्रकार घटने-बढ़ने को बैरोमीटर का ज्वार-भाटा कहा जाता है। वस्तुतः, वायुदाब के औसत दैनिक परिवर्तन को जानने हेतु काफी लंबी अवधि तक प्रत्येक घण्टे के अंकित वायुदाब का औसत निकाला जाता है। यह औसत अल्पकालीन वायुमण्डलीय प्रभावों से मुक्त होता है। निम्न अक्षांशों में समुद्र के पास स्थित स्थानों के दैनिक ायुदाब में अधिक परिवर्तन होता है जबकि उच्च अक्षांशों में अपेक्षाकृत कम होता । महाद्वीपों पर दिन में वायुदाब परिवर्तन अधिकतम होता है, रात में कम, जबकि सागरों पर ठीक इसके विपरीत। दैनिक वायुदाब वर्षा, बादल, आर्द्रता की मात्रा, न, तेज हवा इत्यादि से प्रभावित होता है।

(ii) अनियमित दैनिक वायुदाब परिवर्तनः तूफान, चक्रवात, प्रतिचक्रवात युमण्डलीय विक्षोभ वायुदाब के दैनिक परिवर्तन में अनियमितता का कारण । उष्ण कटिबंध अर्थात् विषुवत् रेखा से कर्क और मकर रेखा के बीच हुत कम मात्रा में उत्पन्न होते हैं अतः, यहां वायुदाब के दैनिक चक्र अनियमितता नहीं आ पाती है। दूसरी तरफ, शीतोष्ण कटिबंधों में था तूफानों के ज्यादा संख्या में होने के कारण दैनिक वायुदाबीय ज्यादा मात्रा में दृष्टिगोचर होती है।

(iii) वार्षिक वायुदाब परिवर्तनः वार्षिक वायुदाब परिवर्तन के रूप से मौसम या सूर्य का उत्तरायन तथा दक्षिणायन होना जिम्मेदार है। में स्तोंब पर वार्षिक स्तर पर वायुमण्डलीय दाब की स्थिति में बदलाव हालांकि विषुवत रेखा और ध्रुव इस परिवर्तन से लगभग अप्रभावित रहते रेखा पर वर्ष भर उच्च तापमान के कारण निम्न दाब मिलता है, जबकि निम्न तापमान के कारण उच्चदाब प्राप्त होता है। विषुवत् रेखा से और उत्तर कटिबंध में सबसे ज्यादा वायुदाब परिवर्तन होता है या यहां अन्य की तुलना में अधिक वार्षिक वायुदाबांतर (annual pressure variation) होता है।

वायुदाब का क्षैतिज वितरण

पृथ्वी पर वायुदाब के क्षैतिज वितरण को दो तरह से दिखाया जा सकता है। वायुदाब पेटी के अक्षांशीय विस्तार के आधार पर। दूसरे, जनवरी और की समदाब रेखाओं के अक्षांशीय वितरण के आधार पर। वायुदाब दो प्रकार होता है–उच्च वायुदाब तथा निम्न वायुदाब। पृथ्वी के धरातल पर मुख्य चार वायुदाब कटिबंध हैं। पृथ्वी के धरातल के वायुमण्डल के क्षैतिज वितरण कारण वायुदाब कटिबंधों का निर्माण होता है। इस आधार पर पृथ्वी पर चारों वायुदाब पट्टियों का विवरण निम्नांकित है–

(i) विषुवत रेखीय निम्न वायु दाब पेटीः इसका विस्तार दोनों गोलार्द्धों में 0° अक्षांश रेखा से 5° अक्षांश तक है, पर इसके विस्तार को 10° अक्षांश तक माना जा सकता है। हालांकि, सूर्य के उत्तरायन और दक्षिणायन होने पर इस पेटी में खिसकाव या स्थानांतरण होता रहता है। उल्लेखनीय है कि आई शुष्क वायु की तुलना में हल्की होती है। साथ ही यहां से दोनों गोलार्द्धों के उष्ण वायुदाब कटिबंध को चलने वाले व्यापारिक पवनों का भी अभिसरण होता है जिसके कारण यहां वायुदाब कम होता है। इस क्षेत्र में धरातल पर वायु लगभग गतिहीन या शांत होती है तथा उसकी दिशा अनिश्चित अथवा लम्बवत् धारा के रूप में होती है। इसी कारण इस क्षेत्र को शांत कटिबंध या डोलड्रम्स (doldrums) भी कहते हैं।

(ii) उपोष्ण कटिबंधीय उच्च दाब पेटीः इस पेटी का विस्तार दोनों गोलार्द्धों में 25° से लेकर 35° अक्षांशों के बीच है। यहां पर उच्च दाब पाये जाने का कारण तापीय नहीं वरन् गत्यात्मक है। फलतः, इन अक्षांशों के ऊपर काफी वायु जमा हो जाती है तथा तापमान के अनुसार निम्न दाब क्षेत्र होने की बजाय यहां उच्च दाब प्राप्त होता है। शीतकाल के दो महीनों को छोड़ दें, तो यहां ग्लोब का उच्चतम तापक्रम ज्ञात किया जाता है। उच्च दाब के इस अक्षांश को अश्व अक्षांश (horse latitude) भी कहा जाता है। प्राचीन काल के नाविकों को इस क्षेत्र में उच्च दाब के कारण काफी कठिनाई होती थी। अतः, वे जलयानों का बोझ हल्का करने हेतु कुछ घोड़े समुद्र में फेंक देते थे।

(iii) उपध्रुवीय निम्न दाब पेटीः दोनों गोलार्द्धों में 60° से 70° अक्षांश रेखाओं अर्थात् आर्कटिक तथा अण्टार्कटिक वृत्तों के निकट निम्न वायुदाब का क्षेत्र प्राप्त होता है। तापमान के अनुसार यह उच्च दाब का क्षेत्र होना चाहिए था, परंतु यहां निम्न दाब प्राप्त होता है। ऐसा पृथ्वी के घूर्णन-बल के कारण हवाओं के विक्षेपण से होता है। इन अक्षांशों पर हवाएं बाहर अंतरिक्ष की तरफ फेंकी जाती हैं, फलतः वायु की कमी हो जाती है और निम्न दाब का क्षेत्र विकसित हो जाता है।

(iv) ध्रुवीय उच्च दाब पेटीः पृथ्वी के दोनों ध्रुवों पर औसतन 40 प्रति ही सूर्यातप प्राप्त होता है। सूर्य की किरणें काफी तिरछी लगभग समानांतर पहुंचती हैं। अतः, यहां बहुत कम तापमान पाया जाता है तथा धरातल सं से आवृत्त रहता है। अतः, शीतल और भारी वायु, उच्च दाब क्षेत्र क कर देती हैं। हालांकि, पृथ्वी के गतिक कारणों से यहां वायु का ज्यादा स होना चाहिए था क्योंकि पृथ्वी की गति अध्रुवीय निम्न दाब पेटी से प्रभावशाली होती है, पर तापीय कारण से यहां उच्च दाब पाया ज

WWW.GRADESETTER.COM

WWW.GRADESETTER.COM

...ओं के आधार पर वायुदाब का क्षैतिज वितरण

...दाब रेखा: जनवरी में सूर्य दक्षिणायन होता है। अतः निम्न ...भी विषुवत रेखा के दक्षिण की ओर खिसक जाती है और ...अमेरिका तथा अफ्रीका में निम्न दाब विकसित हो जाता है। ...तथा सुदूर दक्षिण महासागरों तथा 65° दक्षिण अक्षांश से आगे ...होते हैं। दक्षिण गोलार्द्ध में जल भाग के अधिक विस्तार ...रेखा की सकता ज्यादा नहीं होती है। दूसरी तरफ, उत्तरी गोलार्द्ध ...होता है। महाद्वीपों पर और उत्तर की तरफ तक उच्च ...जाती है। उच्च वायुदाब कोश की जगह उच्च वायुदाब ...जाता है। महासागरों पर अपेक्षाकृत निम्न दाब प्राप्त होता ...गोलार्द्ध में महासागरों पर उच्च दाब का क्षेत्र रहता है। साइबेरिया ...उत्तरी गोलार्द्ध के सबसे शीतल क्षेत्र बन जाते हैं और ...दक्षिण की तरफ खिसक कर 30° उत्तरी अक्षांश तक आ

...दाब रेखा: जुलाई में सूर्य उत्तरायन हो जाता है अतः निम्न ...पर उत्तर की तरफ खिसक जाती है। विषुवत रेखीय निम्न दाव ...तरफ खिसक जाती है। दक्षिण गोलार्द्ध में आस्ट्रेलिया पर उच्च ...जाता है तथा मकर रेखा के दक्षिण में अंटार्कटिक क्षेत्र में अत्यधिक ...हो जाता है। यह क्षेत्र बढ़कर मकर रेखा तक आ पहुंचता ...एशिया और उ. अमेरिका में निम्न दाव विकसित हो जाता ...पर अपेक्षाकृत उच्च दाव पाया जाता है। उत्तरी गोलार्द्ध में तापीय ...कटिबंधीय उच्च दाव लुप्त हो जाता है। यहां निम्न दाव विकसित

...का लम्बवत् वितरण

...मेल से निर्मित हुआ है। गैसों का मिश्रण होने के कारण हवा ...होती है या सिकुड़ती है। यही कारण है कि वायु का घनत्व ...तुलना में निचली परतों में अधिक होता है। यहां हवा ऊपर की ...भार से दबी रहती है। जबकि ऊपरी परतों का दाब और घनत्व ...लगता है। ऊंचाई के साथ वायुदाब घटता है, पर इसके घटने ...एक समान नहीं रहती है। यह दर घनत्व, तापमान जलवाष्प की ...आकर्षण शक्ति से प्रभावित होती है या इन पर निर्भर रहती है। ...सभी कारक स्थायी न होकर परिवर्तनशील हैं। अतः, ऊंचाई पर ...दर के बीच कोई सीधा आनुपातिक संबंध संभव नहीं है। लेकिन, ...के अनुसार, क्षोभमण्डल में ऊंचाई के साथ वायुदाब घटने ...मीटर की ऊंचाई पर 34 मिलीबार है। उल्लेखनीय है कि ऊंचाई ...धरातल और समुद्र तल पर वायुदाब वितरण प्रणाली में अंतर है।

वायु दाब प्रवणता

...खाओं से समकोण की दिशा में वायुदाब ह्रास की दर को नापा ...से वायुदाब प्रवणता (pressure gradient) कहा जाता है। इसे ...परिभाषित किया जा सकता है—वायुदाब में परिवर्तन की दर एवं ...प्रवणता या वायु-दाबमापी ढाल (barometric slope) कहते ...दाब रेखाएं तीव्र दाब-प्रवणता को दर्शाती हैं। जबकि दूर-दूर ...मंद दाब-प्रवणता का संकेत करती हैं। 24 कि.मी. में .34 ...ट को वायुदाब प्रवणता इकाई माना जाता है। प्रपाती ...कारण वायु का वेग अधिक होता है, तथा प्रवणता के निम्न ...कम होता है। वायु का वेग वायुदाब-प्रवणता पर ही निर्भर

...वात एवं प्रतिचक्रवात

...दाब केंद्र में होता है। जिसके चारों ओर उच्च दाब ...ओर से केंद्र की तरफ हवाएं चलती हैं। इन हवाओं ...की सुइयों के अनुकूल होती है। चक्रवात आकार में गोलाकार, अण्डाकार या V अक्षर के समान होता है। चक्रवात, मौसम को बहुत ज्यादा प्रभावित करते हैं। इनसे वर्षा और तापमान पर असर पड़ता है। चक्रवात अचानक इन दोनों में परिवर्तन ला देते हैं।

प्रतिचक्रवात

प्रति चक्रवात वृत्ताकार समदाब रेखाओं द्वारा घिरा हुआ वायु का एक ऐसा क्रम है, जिसके केंद्र में वायु दाब अधिकतम होता है। केंद्र से बाहर की ओर यह क्रमशः घटता जाता है। फलस्वरूप हवाएं केंद्र से परिधि की ओर बहती हैं। इनकी उत्पत्ति मुख्यतः उपोष्ण कटिबंधीय उच्च दाब क्षेत्र में होती है। यहां वायु ऊपर से नीचे उतरती है एवं धीरे-धीरे बहती है। प्रति चक्रवात में वायु की दिशा उत्तरी गोलार्द्ध में घड़ी की सुइयों के अनुकूल तथा दक्षिणी गोलार्द्ध में विपरीत होती है।

पवन

एक स्थान से एक निश्चित दिशा को चलती हुई वायु (air) को पवन (wind) कहते हैं। वायुदाव के क्षैतिज वितरण में अंतर अथवा वायु में घनत्व की भिन्नता होने पर चलती है। यह वायुदाव की विषमताओं को संतुलित करने की दशा में प्रकृति का प्रयास है। लगभग ऊर्ध्वाधर दिशा में गतिमान हवा को वायुधारा कहते हैं। पवन और वायुधाराएं, दोनों मिलकर वायुमण्डल में एक संचारतंत्र स्थापित करती हैं।

पवन की दिशा सिर्फ उच्च दाव से निम्न दाव की ओर नहीं रह पाती। पवन की दिशा को प्रभावित करने वाले कारकों से संबंधित तथ्य संक्षेप में निम्न हैं—

(i) कोरिऑलिस बल: पवन की दिशा में परिवर्तन लाने वाले इस बल को विक्षेप वल (deflection force) भी कहा जाता है, पर वाद में भूगोल वेत्ता जी. जी. कोरिऑलिस के नाम पर इसे कॉरिआलिस बल कहा जाने लगा। इसे फेरेल का नियम भी कहते हैं। कॉरिऑलिस वल के कारण उत्तरी गोलार्द्ध में हवायें प्रवणता की दिशा से दायीं ओर तथा दक्षिणी गोलार्द्ध में बायीं ओर मुड़ जाती हैं। 'फेरेल' नामक भूगोलवेत्ता ने इसे इस प्रकार स्पष्ट किया है—"जिस दिशा में पवन प्रवाहित हो रही हो, यदि उस दिशा में मुख करके (अथवा जिस दिशा से पवन आ रही हो, उस दिशा की ओर पीठ करके) खड़े हो जाएं, तो हवाएं शरीर से टकराकर उत्तरी गोलार्द्ध में दाहिनी ओर तथा दक्षिणी गोलार्द्ध में बायीं ओर मुड़ जाती है।"

(ii) बॉयज बैलट नियम: यह देखा गया है कि विषुवत रेखा पर हवाओं की दिशा पृथ्वी की अक्षीय गति से लगभग नहीं के बराबर प्रभावित होती है। इसी तथ्य को ध्यान में रखकर बॉयज बैलट ने अपने सिद्धांत का प्रतिपादन किया, जिसके अनुसार—"जिस दिशा में हवा चल रही है, यदि उस दिशा में मुख करके खड़ा हुआ जाए, तो उत्तरी गोलार्द्ध में न्यून वायुदाब बायीं ओर तथा दक्षिणी गोलार्द्ध में दाहिनी ओर होगा।" भू-विक्षेपी पवन (geostrophic wind) वस्तुतः वे पवन हैं, जो समदाब रेखाओं के समानांतर गतिशील रहती हैं। घूर्णन जनित विक्षेपक बल (rotational force) तथा वायुदाब प्रवणता में समानता के कारण समदाब रेखाओं के समानांतर चलने वाली यह पवन उत्पन्न होती है। ऊंचाई के साथ इस पवन में परिवर्तन भी होता है जिसकी जानकारी के लिए एक आरेख बनाया जाता है जिसे होडोग्राफ (hodograph) कहते हैं।

(iii) दाब प्रवणता तथा पवन-दिशा: दाब प्रवणता को बैरोमेट्रिक ढाल कहते हैं। इसका पवन संचार और उसकी दिशा से गहरा संबंध है। हवा उच्च दाव से निम्न दाब या निम्न बैरोमेट्रिक ढाल की तरफ बहती है। बैरोमेट्रिक ढाल की दिशा समदाब रेखाओं के समकोण की दिशा होती है। अतः हवाओं की भी दिशा वही होनी चाहिए, पर कोरिऑलिस बल के प्रभाव के कारण हवाओं की दिशा में थोड़ा अंतर आ जाता है और हवाएं समदाब रेखाओं को समकोण पर न काटकर न्यून कोण पर काटती हैं।

(iv) घर्षण और पवन की दिशा: घर्षण बल का जन्म धरातल और उसके समानांतर प्रवाहित होने वाली वायु के संघर्ष के कारण होता है। यह पवन की गति और दिशा दोनों को प्रभावित करता है। घर्षण बल पवन प्रवाह की दिशा के विपरीत कार्य करता है और वायु के वेग के वर्ग का समानुपाती होता है। पृथ्वी के धरातल की असमानताएं तथा रुखापन, अवरोध और घर्षण उत्पन्न करते

WWW.GRADESETTER.COM

WWW.GRADESETTER.COM

अतः इन उच्चावचनों के कारण पवन प्रवाह में गतिरोध और अनियमितता आ जाती है।

अभिकेंद्रीय त्वरण: पृथ्वी के घूर्णन से अभिकेंद्रीय त्वरण का संबंध है। घूर्णन करती हुयी पृथ्वी के घूर्णन केंद्र की दिशा में भीतर की तरफ होने वाले त्वरण के कारण पवन के लिए स्थानीय उच्च वायुदाब या निम्न वायुदाब के चारों तरफ समदाब रेखाओं के लगभग समानांतर एक वक्रपथ बनाए रख पाना संभव होता है, इसे अभिकेंद्रीय त्वरण कहते हैं। पवन की इस गति को पवन के अपकेंद्र बल से भी समझा जा सकता है। पवन का मार्ग चक्रीय या वृत्ताकार होने से पवन के अपकेंद्री बल का जन्म होता है।

पवन का वर्गीकरण

पृथ्वी पर बहने वाली हवाओं या पवन को मुख्य रूप से तीन भागों में बांटा जा सकता है—(I) स्थायी, सनातनी, प्रचलित या ग्रहीय पवन (II) सामयिक पवन एवं (III) स्थानीय पवन।

I. स्थायी पवनः ग्लोब पर स्थित विभिन्न वायुदाब पट्टियों अर्थात् उच्च दाब क्षेत्र तथा निम्न दाब क्षेत्र को पवन व्यवस्था को आसानी से समझ सकने के संदर्भ में स्थायी मान लिया गया है। अतः, इन स्थायी पट्टियों में उच्च दाब से निम्न दाब की ओर जो पवनें चलती हैं, उनकी दिशा वर्ष भर लगभग एक ही होती है। हालांकि इनके क्षेत्र में मौसमी बदलाव अवश्य आता है। इन्हें स्थायी, सनातनी या प्रचलित पवनें कहते हैं। पृथ्वी की गति, ताप तथा दाब से इनका संबंध होने के कारण तथा संपूर्ण ग्लोब पर प्रसार होने के कारण इन्हें ग्रहीय पवन भी कहते हैं। स्थायी पवन के भी तीन प्रकार हैं—(i) व्यापारिक पवन (ii) विरुद्ध व्यापारिक पवन या पछुआ पवन तथा (iii) ध्रुवीय पवन।

(i) व्यापारिक पवनः विषुवत् रेखीय निम्न दाब तथा उपोष्ण उच्च दाब पेटी के बीच उच्च दाब से निम्न दाब, अर्थात् 30° उत्तरी तथा दक्षिणी अक्षांशों से 0° अक्षांश रेखा की ओर वर्ष भर लगातार बहने वाली पवन को व्यापारिक पवन कहा जाता है। इसे अंग्रेजी में ट्रेड विंड (trade winds) कहा जाता है। पृथ्वी पर दाब-पेटी के विस्तार के सिद्धांत के अनुसार उत्तरी गोलार्द्ध में इन पवनों की गति उत्तर से दक्षिण तथा दक्षिण गोलार्द्ध में दक्षिण से उत्तर होनी चाहिए पर कॉरिऑलिस बल या फेरेल नियम के अनुसार इन पवनों का विक्षेप हो जाता है। अतः, ये पवन उत्तरी गोलार्द्ध में उत्तर-पूर्वी व्यापारिक पवन तथा दक्षिणी गोलार्द्ध में दक्षिण-पूर्वी व्यापारिक पवन के रूप में वर्ष भर बहती रहती हैं। इन पवनों के कारण इस गोलार्द्ध में भारी वर्षा भी होती है। उच्च तापमान के कारण हवा गर्म होकर ऊपर पहुंच जाती हैं तथा शीतल होकर वर्षा कराती है। यहां वायु की गति संवहन धारा के रूप में होती है। अतः वर्षा संवाहनिक होती है। इन हवाओं से पालयुक्त जलयान के संचालन में सुविधा होती थी, इसी कारण इन्हें व्यापारिक पवन का नाम दिया गया।

(ii) विरुद्ध व्यापारिक या पछुआ पवनः उपोष्ण उच्च वायुदाब से उपध्रुवीय निम्न वायुदाब के बीच दोनों गोलार्द्धों में अर्थात् 30°-35° और 60° - 65° अक्षांशों के बीच प्रवाहित होने वाली स्थायी पवन पछुवा पवन या विरुद्ध व्यापारिक पवन कहलाती है। उत्तरी गोलार्द्ध में इसकी दिशा दक्षिण-पश्चिम से उत्तर-पूरब तथा दक्षिणी गोलार्द्ध में उत्तर-पश्चिम से दक्षिण-पूरब होती है। ध्यानीय है कि इन हवाओं की ध्रुवीय सीमा में परिवर्तन होता रहता है। जल थल का वितरण दोनों गोलार्द्ध में असमान है। उत्तरी गोलार्द्ध में स्थल की ता के कारण पछुआ पवनें यहां अधिक जटिल हो जाती हैं और गर्मी में केय तथा जाड़े में अधिक सक्रिय हो जाती हैं। सागरों के ऊपर चलने ये हवायें भरपूर आर्द्र होती हैं और अपने अक्षांशों में महाद्वीपों के पश्चिमी वुर वर्षा कराती हैं। दक्षिणी गोलार्द्ध में समुद्र की अधिकता के कारण बहुत तीव्र हो जाती है। इसी कारण, दक्षिणी गोलार्द्ध में 40° अक्षांशों **गरजती चालीसा** (Roaring Forties) 50° के पास भयंकर या (Furious Fifties) तथा 60° दक्षिण अक्षांश के पास **चीखता साठा** Sixties) कहा जाता है। ध्यातव्य है कि 30°-33° अक्षांशों को ही अश्व अक्षांश भी कहा जाता है। व्यापारिक तथा विरुद्ध व्यापारिक थत इस पेटी में व्यापारिक पवनों के विपरीत दिशा में प्रवाहित

होकर यहां नीचे उतरने या जमा हो जाने से उच्च दाब बन जाता है। चक्रवातीय दशा उत्पन्न हो जाती है। फलतः, वायुमंडल गतिहीन सा हो जाता है।

महाद्वीपों के पश्चिमी किनारों पर शुष्क मरुस्थलों जैसे—सहारा, अरब, चिली, पेरू इत्यादि स्थित होने के पीछे इन अक्षांशों में पवनों के चक्रवातों का ही हाथ है। इन चक्रवातों के पूर्वी छोर बने उपोष्ण कटिबंधीय चक्रवातों का ही हाथ है। इन चक्रवातों के पूर्वी और भागों में अंतर होता है। पूर्वी भाग में हवा के उतरने तथा तापक्रम के के कारण वायुमंडल में स्थिरता व शुष्कता आ जाती है फलतः, यहां हैं। यही वजह है कि 20°-30° अक्षांश के बीच महाद्वीपों के पश्चिम मरुस्थल हैं। जबकि चक्रवातों का पश्चिमी भाग आर्द्र होता है। के पूर्वी भाग पर अच्छी बारिश होती है।

(iii) ध्रुवीय पवनः 60° से 65° और 90° अक्षांशों के बीच में स्थायी रूप से बहने वाली हवा को ध्रुवीय पवन कहा जाता है। के अक्षांशों के बीच निम्न दाब रहता है तथा ध्रुवों पर उच्च दाब। से अत्यधिक शीतल हवाएं शीतोष्ण कटिबंधीय निम्न दाब की ओर रहती हैं। उत्तरी गोलार्द्ध में इनकी दिशा उत्तरपूर्वी तथा दक्षिणी पूर्वी होती है। गर्मी में इनका क्षेत्र थोड़ा संकुचित हो जाता है, परंतु विस्तार 60° अक्षांशों तक हो जाता है।

II. सामयिक पवनः मौसम तथा समय परिवर्तन के साथ जिन दिशा में परिवर्तन हो जाता है, उन्हें सामयिक पवन कहते हैं। मौसम और गमन तथा समय से इनका प्रत्यक्ष संबंध होता है या ये भी सकता है कि ये मौसम से तथा मौसम इनसे प्रभावित होता है। समीर, स्थल समीर, घाटी समीर, पर्वत समीर इत्यादि सामयिक उदाहरण हैं।

(i) मानसूनः मौसम के अनुसार अपनी दिशाओं को बदलने वाली मानसून कहलाती है। वस्तुतः मानसून शब्द अरबी भाषा के 'मौसिम' बनाया गया है, जिसका अर्थ होता है मौसम। मानसून पवन को आसान से समझने हेतु इतना काफी है कि ये बड़े पैमाने पर स्थल समीर एवं का विस्तृत रूप हैं।

दरअसल, मानसून पवन भूमंडलीय पवन तंत्र का रूपांतरण है जिसकी में धरातल तथा क्षोभमंडल के ऊपरी संस्तर में होने वाले तापीय परिवर्तन या अनिवार्य भूमिका निभाते हैं। जल स्थल की स्वभावगत विशेषता के कारण

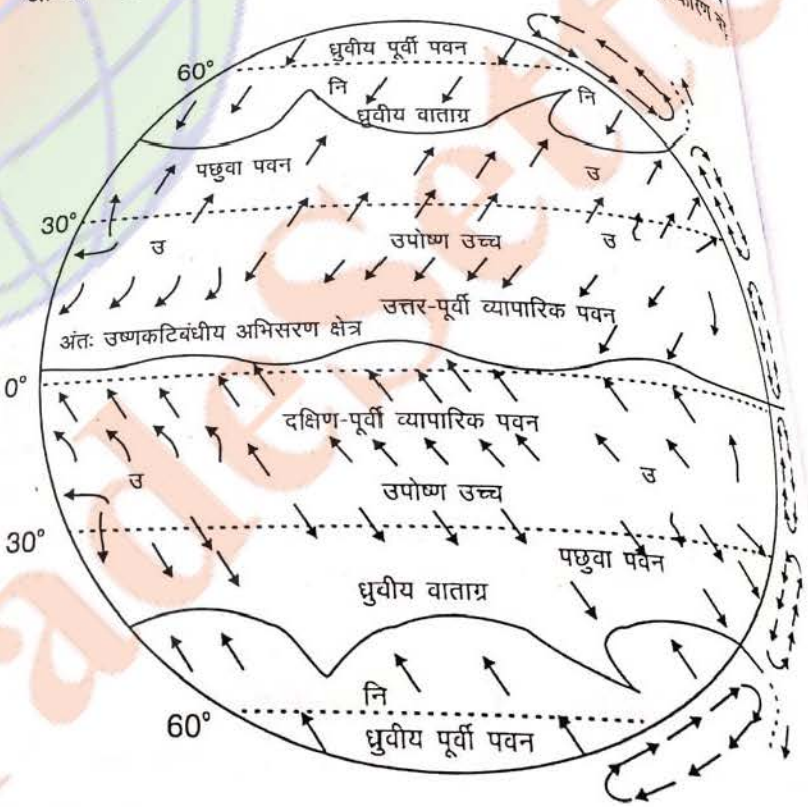

प्रचलित पवन

WWW.GRADESETTER.COM

WWW.GRADESETTER.COM

...भिन्नता उत्पन्न होती है, जो मानसून के लिए जिम्मेदार है। ...भारत, पाकिस्तान, बांग्लादेश, म्यांमार, श्रीलंका, अरब सागर, बंगाल ...दक्षिण-पूर्वी एशिया, उत्तरी आस्ट्रेलिया, चीन तथा जापान के ऊपर ...है।

...दाब पेटियों के खिसकाव या स्थानांतरण से प्रभावित होती ...पवन दाब एवं खिसकाव का सामान्य प्रारूप ...होता है तो विषुवतीय निम्न दाब उत्तर की तरफ खिसक ...जाता है। जुलाई में निम्न दाब एवं समुद्र पर उच्च दाब क्षेत्र बन जाता है। ...खिसकाव के साथ उष्ण कटिबंधीय पूर्वी पवन में दबा विषुवतीय ...भी उत्तर की ओर खिसक जाता है और महासागर से स्थल की ओर ...है। इन्हें ही दक्षिण पश्चिम ग्रीष्मकालीन मानसून कहा जाता है। ...तापन हो जाता है, वायुदाब पेटी दक्षिण की ओर खिसक जाती है ...वर्षा नहीं होता है। वस्तुतः मानसून के विकास के लिए अयन रेखा के ...भारी और दूसरी ओर विशाल स्थलखंड का विस्तृत होना जरूरी है।

(ii) समुद्र समीर: दिन में जल की अपेक्षा स्थल जल्दी गर्म हो जाता है, ...दाब विकसित हो जाता है। समुद्र अपेक्षाकृत गर्म रहता है, अतः ...निम्न दाब रहता है, फलतः समुद्री उच्च दाब से स्थलीय निम्न दाब की तरफ ...प्रवाहित होने लगती है। यह हवा समुद्रतटीय क्षेत्रों के तापमान और आर्द्रता ...तापमान का तापमान विकिरण के कारण जल्दी घटने लगता है, जबकि समुद्र ...की तुलना में अपेक्षाकृत गर्म रहता है, अतः समुद्र पर निम्न दाब तथा ...पर उच्च दाब बन जाता है और रात में स्थलीय उच्च दाब से समुद्री निम्न ...की ओर हवा प्रवाहित होने लगती है।

(iii) पर्वत-समीर, घाटी समीर: दिन और रात के कारण पर्वत और घाटी ...हवा का पवन प्रवाह प्रभावित होता है। दिन के समय घाटी की तुलना में पर्वतीय ...अधिक गर्म हो जाते है। फलतः घाटी में उच्च दाब और पर्वतों की ढाल ...निम्न दाब विकसित हो जाता है। दिन के समय पवन घाटी से ढाल की ओर ...चलने लगता है, जिसे घाटी समीर कहते हैं।

सूर्यास्त के बाद पृथ्वी के विकिरण के कारण ढाल तेजी से शीतल होने लगती है जबकि घाटी अपेक्षाकृत गर्म रहती है। अतः ढाल से घाटी की तरफ समीर बहने लगता है जिसे पर्वतीय समीर कहा जाता है।

III. स्थानीय पवन: जिन पवनों का विकास स्थानीय स्तर पर तापमान और वायुदाब में अंतर के कारण होता है, उन्हें स्थानीय पवन कहा जाता है। इनका प्रभाव क्षेत्र छोटा होता है तथा ये क्षोभमंडल की निचली परतों तक ही सीमित रहती हैं। कुछ महत्वपूर्ण स्थानीय पवनें निम्नलिखित हैं:

(i) लू: उत्तरी भारत और पाकिस्तान के मैदानी भागों में मई और जून के महीनों में दोपहर के बाद अत्यधिक गर्म और शुष्क हवा पश्चिम दिशा से बहती है जिसे लू कहा जाता है। इसका तापमान 45° से 50° सेल्सियस के बीच रहता है। इन्हें ताप-लहरी भी कहा जाता है।

(ii) फॉन: आल्प्स के पर्वतीय क्षेत्र में बहने वाली जोरदार, झोंके वाली शुष्क और गर्म पवन फॉन कहलाती है। यह पर्वत श्रेणियों की पवन विमुख ढालों पर विकसित होती है। इसका तापमान 15° से 20° डिग्री सेल्सियस रहता है।

(iii) शिनूक: संयुक्त राज्य अमेरिका और कनाडा में रॉकी पर्वत श्रेणी की पूर्वी ढालों पर बहने वाली पवन को शिनूक कहा जाता है। यह फॉन के जैसी पवन है जो शीतकाल को नियंत्रित कर देती है, अतः पशुपालकों और फल की खेती करने वालों के लिए विशेष लाभदायक होती है।

(iv) मिस्ट्रल: मिस्ट्रल ठण्डी ध्रुवीय हवा है, जो रोन नदी की घाटी से होकर बहती है। यह भूमध्य सागर के उत्तरी-पश्चिमी भाग, विशेषकर स्पेन तथा फ्रांस को प्रभावित करती है। मिस्ट्रल की गति 56-64 कि.मी. प्रति घंटे होती है, कभी-कभी इसकी गति 128 कि.मी. प्रति घंटे होती है। इनके आगमन से तापमान हिमांक से नीचे गिर जाता है। इन हवाओं के प्रभाव से बगीचों को बचाने के लिए, उन्हें पवन-प्रवाह दिशा के समकोण पर लगाया जाता है।

(v) हरमटन: अफ्रीका के सहारा मरुस्थल से शुष्क और तेज गति से बहने वाली आंधी को हरमटन कहते हैं। यह अति गर्म और धूलयुक्त होती है और सहारा में ऊंटों के काफिलों के लिए बहुत कष्टदायक होती है। जबकि गिनी तट पर यह नमी युक्त ऊष्मा से लोगों को राहत देती है।

(vi) सिरोको: सिरोको भी गर्म, शुष्क तथा रेत और धूलयुक्त हवा होती है। यह सहारा के रेगिस्तान से उत्तर दिशा में भूमध्य सागर की ओर चलकर इटली, स्पेन आदि में प्रविष्ट होती है। इटली में इसका नाम सिरोको है। इनमें भूमध्य सागर से गुजरने पर नमी प्रवेश कर जाती है, जिससे वर्षा होती है। जब लाल रेत नीचे बैठने लगती है, तब लाल बारिश होती है जिसे रक्त वृष्टि (blood rain) कहते हैं। इस हवा को मिस्र में 'खमसिन', लीबिया में 'गिबली', ट्यूनीशिया में 'चिली' और स्पेन में 'लेवेक' नाम से पुकारा जाता है।

(vii) सिमूम: अरब और सहारा के रेगिस्तान में चलने वाली गर्म हवा सिमूम कहते हैं। सिमूम अत्यंत गर्म, शुष्क तथा तूफानी हवा है, जिसमें रे आंधियां चलती हैं और दृश्यता प्रभावित होती है।

(viii) बोरा: 'बोरा' मिस्ट्रल के समान शुष्क एवं अत्यधिक शीतल जो एड्रियाटिक सागर के पूर्वी किनारे पर बहती है। बोरा से इटली का उ ज्यादा प्रभावित होता है। यह मिस्ट्रल की तुलना में अधिक आर्द्र होती गति 60 कि.मी. प्रति घंटा होती है।

(ix) ब्लिजर्ड: ब्लिजर्ड को हिम झंझावात या ध्रुवीय हवा भी बर्फ कण से युक्त हवा होती है। इनका क्षेत्र उत्तरी और दक्षिणी ध्रु कनाडा तथा संयुक्त राज्य अमेरिका है। इनकी गति बहुत तीव्र (प्रति घंटे) होती है तथा ये दृश्यता को प्रभावित करते हैं तथा ता से भी नीचा कर देते हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका में इनको 'नॉर्दन साइबेरिया में 'बुरान। बुरान को 'पुर्गा' के नाम से भी जा

(x) बाग्यो: फिलीपींस में चलने वाली उष्ण कटिबंधी को बाग्यो कहते हैं।

(xi) बर्गविंड: बर्ग-पवन दक्षिण अफ्रीका के पठारी शीतकाल में चलती हैं। ये कोष्ण और शुष्क पवन है

(xii) लेवेंटे: भूमध्य सागर, फ्रांस और स्पेन के द

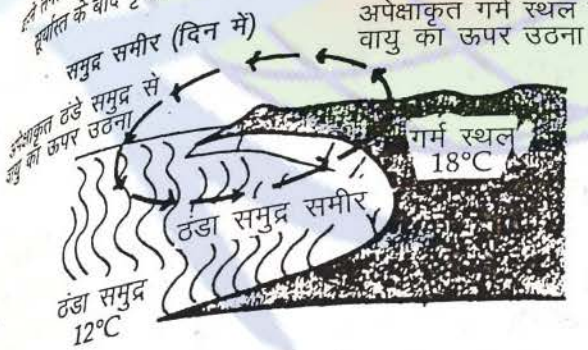

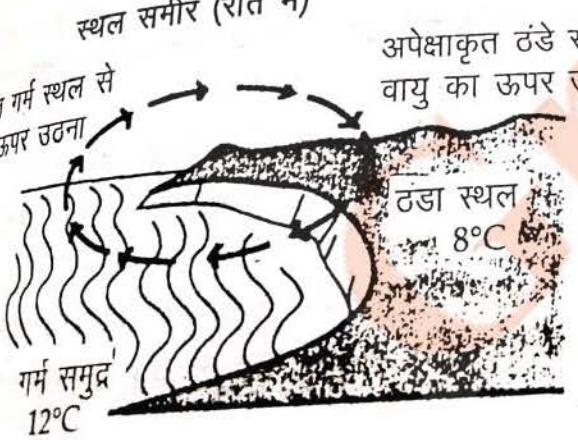

WWW.GRADESETTER.COM

WWW.GRADESETTER.COM

वाले तीव्र चक्रवात को तेजेदे कहा जाता है। ये फरवरी माह में बहती हैं और वर्षा कराती हैं।

(xviii) लीस्टे: सहारा मरुस्थल में उत्पन्न गर्म और शुष्क पवन लीस्टे कहलाती हैं। यह गर्मी को छोड़कर सभी ऋतुओं में भेड़िरा और कनारी द्वीप समूह के पास बहती हैं। इसमें केंद्रीय निम्न वायु दाब से पूर्व की ओर पवन प्रवाहित होती हैं।

(xix) जूरन: जूरा पर्वत से जेनेवा झील तक रात को बहने वाली शीतल और शुष्क पवन को जूरन कहते हैं।

(xx) हबूब: खारतूम (सूडान) के निकट चलने वाली धूलयुक्त तीव्र आँधी को हबूब कहते हैं। इनसे दृश्य प्रभावित होता है। ये दोपहर के बाद शाम तक व मई से सितंबर तक प्रभावी रहती हैं।

(xvi) ग्रेगाले: शीतऋतु में दक्षिण यूरोप तथा भूमध्य सागरीय क्षेत्र के बीच बहने वाली हवा ग्रेगाले कहलाती है। इनकी दिशा उत्तर-पश्चिम या उत्तर-पूर्वी होती है।

(xvii) फ्राइजेम: मई या जून के महीने में ग्रीनलैंड के उष्ण कटिबंधीय घास क्षेत्र कम्पोज में प्रति चक्रवातों के कारण शीत लहर चलने लगती है, जिससे कम से कम 10° सेंटीग्रेड तापमान घट जाता है। इस शीत लहर को फ्राइजेम कहते हैं।

(xviii) मैस्ट्रो: मैस्ट्रो, भूमध्य सागर के मध्यवर्ती भाग में प्रवाहित होने वाली हवा है।

(xix) पापागायो: मैक्सिको के तटीय क्षेत्र में जाड़े में चलने वाली तीव्र शुष्क और शीतल हवा को पापागयो कहा जाता है। इनके कारण मौसम साफ हो जाता है तथा तापमान कम हो जाता है।

(xx) सैमून: फॉन और शिनूक की तरह ही सैमून भी गर्म एवं शुष्क हवा है, जो ईरान में प्रवाहित होती है।

(xxi) सीस्टन: ईरान के पूर्वी सीस्टन क्षेत्र में गर्मी में 110 कि.मी. से भी अधिक गति से प्रवाहित होने वाली हवा को सीस्टन कहा जाता है। ये '120 दिन के पवन' के नाम से भी जाने जाते हैं।

(xxii) शामल: जून और जुलाई में लगातार 50 कि.मी. प्रति घंटा रफ्तार से चलने वाली हवा शामल कहलाती है। यह गर्म, शुष्क और रेतीली होती है। इनसे इराक में रेतीले तूफान आते हैं। अरब, ईरान और ईराक के मरुस्थलीय क्षेत्र में यह उत्तर और उत्तर-पश्चिम से चलती हैं।

(xxiii) दक्षिण बर्स्टर: ये शीतल शुष्क हवाएं हैं, जिनके अंतर्गत ध्रुवीय वायु राशि गर्म प्रदेशों में भी प्रवेश कर जाती है। आस्ट्रेलिया और न्यूसाउथ वेल्स में यह तापमान काफी नीचे कर देती है।

(xxiv) सुमात्रा: सुमात्रा रेखीय चक्रवात है। यह दक्षिण-पश्चिम मानसून के समय अकस्मात प्रवाहित होने लगती हैं। साथ ही तड़ित तूफानों का रूप धारण कर लेती हैं। इनका क्षेत्र मलक्का जलसंधि के अंतर्गत है।

(xxv) जोण्डा: जोण्डा का दूसरा नाम शीतल फॉन भी है। ये अर्जेंटीना पश्चिम में एण्डीज पर्वत से नीचे मैदानों की ओर गतिशील रहती हैं। ये कोष्ण

5 पवनें हैं।

(xxvi) नेवाडोज: नेवाडोज एनाबेटिक हवा है, जो दक्षिण अमेरिका के ा पर्वत के हिमाच्छादित हिस्से से इक्वेडोर की उच्च घाटियों में नियमित बहती शीतल वायु है जिस पर रात्रि विकिरण और हिम का प्रभाव होता है। फलतः ीं से घाटी की ओर प्रवाहित होती है।

(xxvii) सैंटा-एना: सैंटा-एना गर्म और शुष्क वायु है जो संयुक्त राज्य के दक्षिणी कैलीफोर्निया की सैंटा-एना घाटी में प्रवाहित होती है।

(xxviii) पैम्पेरो: ये ठंडी और तेज गति वाली ध्रुवीय पवन है, जो अर्जेंटीना के पैम्पास क्षेत्र में प्रवाहित होती हैं। रेखीय चक्रवात का रूप ग्रहण कारण ये गर्जन वर्षा और तड़ित झंझा भी साथ लाती हैं।

(xxix) काराबुरन: काराबुरन तेज हवाएं हैं, जिनसे तीव्र धूल युक्त तूफान आकाश काला हो जाता है। ये पवन मध्य एशिया के तारिम होती हैं जो तीव्र उष्ण और उत्तर पूर्वी दिशा से बहती है। इन्हीं एशिया का लोयस मैदान निर्मित हुआ है।

(xxx) ब्रुनाडेल: ब्रुनाडेल एक तीव्र गुरुत्व पवन है, जो शीतकाल की तीव्र प्रभावित करती है। हवा है जो पूर्वी तट को और स्पेन के पूर्वी तट को प्रभावित करती है।

(xxxi) बिली बिलि: बिली-बिली उष्ण कटिबंधीय तीव्र तूफान है, जो आस्ट्रेलिया के उत्तरी-पश्चिमी तट के निकट उत्पन्न और विकसित होता है।

(xxxii) केटाबेटिक पवन: पर्वतीय ढालों से नीचे की ओर गति करने वाली हवा केटाबेटिक हवा कहलाती है। पर्वतीय समीर इसी का प्रकार है। गुरुत्व पवन भी कहते हैं। केटाबेटिक पवन के अंतर्गत शीत ऋतु में समृद्ध क्षेत्रों में पठारों अथवा पर्वतों से घिरे मैदानी भाग में शीतल भारी वायु जमा हो जाता है। कुछ हवा ढालों से खिसककर घाटियों और गुफाओं में जमा हो जाती है। वैसे, इनकी गति सामान्य होती है, पर चक्रवातों के आगमन से ये झोंकेदार पवन का रूप ग्रहण कर लेती हैं। इन्हें अवरोही पवन, गुरुत्व पवन, फाल विन्डस, ड्रेनेज विन्ड्स या केटाबेटिक पवन भी कहते हैं।

(xxxiii) ब्रिक फील्डर: आस्ट्रेलिया के विक्टोरिया प्रदेश में चलने वाली गर्म एवं शुष्क हवा ब्रिकफील्डर कहलाती है।

जेट स्ट्रीम

जेट स्ट्रीम लगभग समानांतर चपटी एवं नलिका जैसी धारा है, जो क्षोभ मंडल की सीमा के नजदीक प्रवाहित होती है। इसका अक्ष अधिकतम वेग की दिशा में होता है। इसका प्रमुख लक्षण सिर्फ प्रचण्ड वायु वेग ही नहीं, बल्कि अनुप्रस्थ वायु अवकरण भी है। साधारणतया, जेट स्ट्रीम हजारों किलोमीटर लम्बी, सैकड़ों कि.मी. चौड़ी तथा कई कि.मी. ऊंची होती है। इसकी धुरी के प्रत्येक विंदु पर इसका न्यूनतम वायु वेग 30 कि.मी. प्रति सेकेण्ड होता है। शीत ऋतु में इनकी स्थिति भूमध्य रेखा से 20° अक्षांश के निकट तक होती है। और, इस समय ग्रीष्म ऋतु की तुलना में इनका औसत वेग दुगुना होता है। वर्तमान समय में जेट स्ट्रीम सिद्धांत को मानसून की उत्पत्ति के लिए सबसे ज्यादा जिम्मेदार, प्रामाणिक और सटीक माना जा रहा है।

जेट स्ट्रीम के दाएं किनारे पर हवा के जमा हो जाने के कारण पछुआ पवन की पेटी के भूमध्य रेखीय किनारे पर पृथ्वी पर उच्च वायुभार क्षेत्र की स्थापना में बहुत मदद मिलती है। इस प्रक्रिया को 'एण्टीसाइक्लो जेनेसिस' कहा जाता है। जेट-स्ट्रीम का संबंध ध्रुवीय वाताग्रों, चक्रवातों तथा तूफानों से होता है। इसके अलावा, इनसे कभी बाढ़ आती है, तो कभी सूखा भी पड़ता है। जेट स्ट्रीम के बारे में वैज्ञानिकों के पास अभी पर्याप्त जानकारी नहीं है। फिर भी इन पवन-धाराओं में उत्पन्न भंवरे चक्रवातीय मौसम को प्रभावित करने के साथ जल वर्षा, तड़ित झंझा, टॉरनेडो, शीतलहरियां या बर्फीले तूफानों को भी प्रभावित करती हैं। साथ ही, इन पर अपने मार्ग में पड़ने वाले धरातलीय उच्चावचनों का भी प्रभाव पड़ता है। उच्च स्थलाकृतियों से घर्षण के कारण इन पवन धाराओं के प्रवाह में बा पहुंचती है।

वैश्विक वायुमंडलीय दाब प्रतिमान, वर्षण तथा जलवायु

वैश्विक वायुमंडलीय दाब व्यवस्था वर्षण के भौगोलिक वितरण में प्रत्यक्ष निभाती है। यह प्रभाव विशेष रूप से अफ्रीका में वायुदाब प्रतिमान त एवं जलवायु के वितरण के बीच संबंध में प्रकट होता है। अधिकांश क्षे जलवायु का क्षैतिज प्रतिमान होता है जो विषुवत रेखा से ध्रुव की ओ तक पसरा हुआ होता है और इसमें अंतःउष्ण कटिबंधीय अ (आईटीसीजेड), अर्द्ध-स्थायी उच्च उपोष्ण कटिबंधीय (एसटीएच अक्षांशीय चक्रवात सम्बद्ध क्षेत्र आते हैं।

विषुवत रेखा के आस-पास अतिवृष्टि जलवायु होती है तथा आर्द्र वन और उष्ण कटिबंधीय मानसून वन पाए जाते हैं। उष्ण वन जलवायु में वर्ष भर अतिवृष्टि होती है जो प्रायः एक वर्ष मे अधिक होती है। अतिवृष्टिपात उष्ण एवं नम वायु का परिणाम है पेटी में परिवर्तित हो जाती है और विषुवत क्षेत्र पर फैल जा

WWW.GRADESETTER.COM

WWW.GRADESETTER.COM

तरफ ढकेलती है जिससे गर्म महासागरीय धारा उत्पन्न होती है। संयुक्त राज्य अमेरिका के सागरतट प्रदेश में पहुंचकर यह (गल्फस्ट्रीम) उत्तर-पूर्व की ओर मुड़ जाती है और उत्तर अटलांटिक तथा यूरोप की तरफ बहने लगती है। अटलांटिक को पार करने के बाद यह उत्तर अटलांटिक धारा में परिवर्तित हो जाती है। जब गल्फस्ट्रीम के ऊपर वायु गुजरती है तो इसकी अस्थिरता बढ़ जाती है और वर्षण की संभावना में वृद्धि होती है।

जैसाकि वायु उच्च उपोष्ण कटिबंध के पूर्वी भाग के चारों तरफ संचरण करती है तो यह ठण्डे जल के ऊपर बहती है और जल को विषुवत की तरफ ढकेलती है जिससे ठण्डी महासागरीय धारा उत्पन्न होती है। पेरू महासागरीय धारा पवन द्वारा संचालित ठण्डी जलधारा है जो दक्षिण अमेरिका के तट के साथ बहती है। ठण्डी जलधारा के ऊपर चलने वाली वायु स्थिर एवं ऊपर की ओर उठने वाली होती है और बादलों एवं वर्षण का निर्माण करती है। शीत तटीय मरुस्थल का निर्माण कुछ तटीय प्रदेशों के किनारे या साथ होता है जिन्हें ठण्डी महासागरीय जलधाराओं द्वारा सीमाबद्ध किया जाता है, उदाहरण के लिए अटाकामा मरुस्थल। ये मरुस्थल अपनी थोड़ी बहुत आर्द्रता कुहरे से प्राप्त करते हैं जिसका निर्माण तब होता है जब गर्म एवं नम वायुराशि ठण्डी महासागरीय जलधारा के ऊपर बहती है और इसके परिणामस्वरूप संघनन होता है।

महासागरीय जलधाराओं का मानचित्रिय परीक्षण कीजिए। उच्च उपोष्ण कटिबंध के चारों तरफ वायु संचरण और इसके द्वारा निर्मित धाराएं ठण्डी एवं गर्म महासागरीय धाराओं के वितरण का एक सामान्य प्रतिमान प्रस्तुत करती हैं। सामान्य रूप से कहा जाए, तो अधिकतर महाद्वीपों के पूर्वी तटों के साथ-साथ गर्म धारा और पश्चिमी तटों के साथ-साथ ठण्डी महासागरीय धाराएं पाई जाती हैं।

अल-नीनो एवं ला-नीना

अठारहवीं शताब्दी में पेरू के मछुआरों ने यह पाया कि पेरू के तट पर कुछ वर्षों के अंतराल पर एक गर्म जलधारा प्रवाहित होने लगती है। इस गर्म जलधारा की उत्पत्ति, क्रिसमस के समय होती है। इसका उन्होंने अल-नीनो (क्रिसमस के बच्चे की धारा) नाम रखा। अल-नीनो के उद्गम के साथ ही तटवर्ती क्षेत्र में सतह के जल का ऊपर आना बंद हो जाता है। इसके परिणामस्वरूप ठंडे जल का स्थानांतरण पश्चिम से आने वाले गर्म जल द्वारा होने लगता है एवं प्लैकटन तथा मछलियां विलुप्त होने लगती हैं।

अल-नीनो की घटनाओं के मध्य एक पूरक घटना देखने को मिलती है। जिसे *ला-नीना* कहा जाता है। ला-नीना घटना के समय मध्य एवं पूर्वी प्रशांत महासागर की सतह का तापमान काफी कम हो जाता है। इसके कारण दक्षिण-पूर्वी व्यापारिक पवन चलने लगती है। इस पवन के प्रभाव से पूरी प्रशांत महासागर के सतह का जल, जलधारा के रूप में पश्चिम की ओर बहने लगता है एवं नीचे का ठण्डा जल ऊपर आ जाता है। ला-नीना का संबंध उत्तरी अमेरिका के सूखा से संबंधित माना जाता है।

वायुदाब एवं पवन का वैश्विक पैमाना

जलवायु परिवर्तन पर अंतर्सरकारी समिति के अनुसार, वायुदाब पृथ्वी के उपोष्ण कटिबंध एवं मध्यअंक्षाशीय क्षेत्रों में बढ़ता है, और उच्च अंक्षाश क्षेत्रों में घटता है। इन परिवर्तनों का परिणाम ध्रुव की ओर विस्तार से होगा तथा हेडले सेल संचरण कमजोर होगा तथा बंवडर के ध्रुव की ओर प्रवास के कारण आर्कटिक एवं अंटार्कटिक प्रदेशों में चक्रवातीय संचरण प्रतिमान में वृद्धि होगी। उपोष्ण कटिबंध एवं मध्य अंक्षाशीय क्षेत्रों में उष्ण दशाओं द्वारा उच्च वायुदाब में वृद्धि की संभावना बलवर्त होगी।

जेट धाराओं की अवस्थिति क्षैतिज तापक्रम प्रवणता से मजबूती से ब होती हैं। यदि वैश्विक तापन के परिणामस्वरूप इस तापक्रम प्रवणता में परि होता है तो हमें उम्मीद करनी चाहिए कि जेट धारा तथा बवण्डर, जो इसके साथ चलते हैं, में भी परिवर्तन हो जाएगा। हाल ही के अनुसंधान में इस घट पता चला है। कार्नेगी संस्थान के वैश्विक पारिस्थितिकी विभाग की वर्ष

WWW.GRADESETTER.COM

WWW.GRADESETTER.COM

में आए अनुसंधान रिपोर्ट में इसका खुलासा हुआ है, जिसमें 1979 से 2001 के 23 वर्षों से भी अधिक के समय में उत्तरी एवं दक्षिणी दोनों गोलार्द्धों में जेट धारा की दशाओं का परीक्षण किया गया है। इसमें पाया गया कि दोनों गोलार्द्धों में जेट धारा में ऊंचाई पर वृद्धि होती है और ध्रुवों की ओर स्थानांतरित हो जाती है। उत्तरी गोलार्द्ध में जेट धारा कमजोर भी होती है। इन परिवर्तनों ने वैश्विक तापन जलवायु मॉडल से उपयुक्त भविष्यवाणी की है और इसमें बवंडर की आवृत्ति तथा गहनता और वर्षण प्रतिमान के लिए के लिए विध्वंसकारी निहितार्थ हैं जो पृथ्वी द्वारा परावर्तित हो जाएगा।

अलनीनो तथा ला नीनो पर वैश्विक तापन का आगामी प्रभाव निश्चित तौर पर कम है। राष्ट्रीय वायुमण्डलीय एवं महासागर प्रशासन ने हाल ही में अनुसंधान में पाया कि पछुआ संचरण में 3.5 प्रतिशत की कमी आई है और इस प्रकार 1800 ईसवी से व्यापारिक पवनें भी कमजोर हुई हैं। वर्ष 1940 से इस प्रक्रिया में तेजी देखी गई और यह प्राकृतिक जलवायु परिवर्तन की तुलना में अधिक है। देखे गए बदलावों को मानव गतिविधियों के प्रभावों द्वारा वर्णित किया गया। सबसे पहला प्रभाव जीवाश्म ईंधन के जलने से ग्रीन हाउस गैसों में देखा गया इसमें अगले 100 वर्षों में 10 प्रतिशत कमी की उम्मीद की गई है। ये परिवर्तन भविष्य की जलवायु की ओर इशारा करते हैं जो संभवतः अल-नीनो से सम्बद्ध है।

6. वायुमण्डलीय आर्द्रता

वायुमण्डल में जलवाष्प सदैव विद्यमान रहती है, किंतु उसके ताप परिवर्तन के कारण आर्द्रता का प्रतिशत घटता बढ़ता रहता है। जब किसी निश्चित तापमान पर वायु में जल-वाष्प की इतनी मात्रा रहती है जितनी उसकी क्षमता होती है, तो ऐसी दशा में वायु को 'संतृप्त' कहते हैं। वायुमण्डल में उपस्थित नमी के अध्ययन तथा मापन के विज्ञान को आर्द्रतामिति (hygrometry) कहते हैं। आर्द्रता-मापन के लिए उपयोग में आने वाले यंत्रों को 'आर्द्रतामापी' अथवा हाइग्रोमीटर (hygrometers) कहते हैं।

(i) सापेक्षिक आर्द्रता (Relative Humidity): किसी निश्चित वायुदाब और तापमान पर वायु के निश्चित आयतन में उपस्थित जल वाष्प की वास्तविक मात्रा तथा उसी दाब एवं तापमान पर उसी आयतन की वायु को संतृप्त करने के लिए आवश्यक जल वाष्प की मात्रा के अनुपात को उस वायु की सापेक्षिक आर्द्रता कहते हैं। इसे प्रतिशत के रूप में व्यक्त किया जाता है। जब सापेक्षिक आर्द्रता 100 प्रतिशत हो जाती है, तब वायु संतृप्त कही जाती है। सापेक्षिक आर्द्रता के द्वारा वाष्पीकरण की मात्रा तथा उसकी दर निर्धारित होती है।

(ii) निरपेक्ष आर्द्रता (Absolute Humidity) हवा के प्रति इकाई आयतन में विद्यमान जलवाष्प की मात्रा को निरपेक्ष आर्द्रता कहते हैं। इसे ग्राम प्रति घनमीटर में व्यक्त किया जाता है। निरपेक्ष आर्द्रता प्रायः भूमध्य रेखा के नजदीक सबसे अधिक पायी जाती है किन्तु ध्रुवों की ओर बढ़ने पर यह कम होती है। समुद्र से दूरी बढ़ने पर भी इसकी मात्रा में काफी अंतर आ जाता है। साधारणतया सर्दी की अपेक्षा गर्मियों में रात की अपेक्षा दिन में अधिक रहती है।

(iii) विशिष्ट आर्द्रता (Specific Humidity): आर्द्रता को व्यक्त की यह अधिक उपयोगी विधि है। वायु की प्रति इकाई संहति तथा उसमें जल वाष्प की संहति के अनुपात को विशिष्ट आर्द्रता कहते हैं। इसे किलोग्राम के रूप में व्यक्त किया जाता है। अतः इस पर वायुदाब एवं में परिवर्तन का कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।

संघनन

जलवाष्प के जल के रूप में बदलने की प्रक्रिया को संघनन कहते का तापमान ओसांक बिंदु से नीचे चला जाये तो संघनन की क्रिय है। संघनन की प्रक्रिया पर वायु के आयतन, तापमान, वायुदाब प्रभाव पड़ता है।

हवा में अति सूक्ष्म कणों के आस-पास की हवा के ठंडी की प्रक्रिया होती है। इस प्रकार के सूक्ष्म कणों को संघनन के कण, धुएं की कालिख और समुद्री नमक के कण, विशेष के केंद्र होते हैं, क्योंकि वे जल का अवशोषण करते हैं। इन *कण* कहते हैं।

संघनन के लिए ऐसे नाभिकों का होना अपेक्षित है जलग्राही नाभिक जो वायुमण्डल में सामान्य रूप से पाये हैं–(i) समुद्री लवण, जिसमें सोडियम क्लोराइड तथा सम्मिलित हैं। (ii) सल्फर डाइ-ऑक्साइड, जिसका ऑ

जल परिवर्तन चक्र

वायुमण्डल में जल तीन अवस्थाओं में विद्यमान रहता है–जल वाष्प (गैसीय अवस्था), हिम (ठोस अवस्था) तथा जल (तरल अवस्था)। वायुमण्डल में आर्द्रता, जलाशयों से वाष्पीकरण तथा पौधों में वाष्पोत्सर्जन से प्राप्त होती है। इस प्रकार वायुमण्डल, महासागरों तथा महाद्वीपों के बीच जल का लगातार आदान-प्रदान वाष्पीकरण, वाष्पोत्सर्जन, संघनन एवं वर्षा की प्रक्रिया द्वारा होता रहता है।

वाष्पीकरण

किसी द्रव के किसी भी तापमान पर क्रमशः गैस में बदलने की प्रक्रिया को वाष्पीकरण कहते हैं। वाष्पीकरण की दर तीन कारकों पर निर्भर होती है–(i) तापमान (ii) हवा में मौजूद जलवाष्प की मात्रा या हवा की आर्द्रता, तथा (iii) हवा की गति। एक ग्राम जल को जल वाष्प में बदलने में लगभग 600 कैलोरी ऊर्जा की आवश्यकता पड़ती है।

गत्यात्मक सिद्धांत (kinetic theory) के अनुसार द्रव के अणु प्रत्येक दिशा में विभिन्न वेग से गतिशील रहते हैं। ताप-प्राप्ति पर कुछ अणु द्रव की सतह पर पहुंच कर पारस्परिक आकर्षण से पुनः द्रव में वापस चले जाते हैं, पर कुछ अणुओं की गतिज ऊर्जा बहुत ज्यादा होती है, अतः वे स्वतंत्र तल पर पहुंच कर वाह्य वायुमंडल में पहुंच जाते हैं। इस प्रकार वे द्रव से गैस में बदल जाते हैं। अधिक गतिज ऊर्जा वाले अणुओं की कमी से द्रव की औसत गतिज ऊर्जा कम हो जाती है जिसे बनाए रखने के लिए द्रव ऊष्मा का अवशोषण करता है। इसी ऊर्जा को वाष्पन की गुप्त ऊष्मा कहा जाता है। इस प्रकार वाष्पीकरण की गुप्त ऊष्मा, ऊष्मा की वह मात्रा है जो एक ग्राम जल को उसके क्वथनांक पर वाष्प में बदलने के लिए अनिवार्य होती है। संघनन को वाष्पीकरण की विपरीत प्रक्रिया कहा जा सकता है, जिसमें जलवाष्प गैस से तरल अवस्था में बदल जाता है। वाष्पीकरण में जिस ऊष्मा का द्रव द्वारा अवशोषण होता है, वही ऊष्मा संघनन की प्रक्रिया में मुक्त हो जाती है जिसे संघनन की गुप्त ऊष्मा कहते हैं। जब ठोस पदार्थ द्रव में बदलता है तो उस प्रक्रिया को संगलन (fusion) कहते हैं। इस प्रक्रिया में पदार्थ के तापमान में कोई बदलाव नहीं आता है। निश्चित तापमान पर एक ग्राम बर्फ को एक ग्राम जल में बदलने के लिए 80 ग्राम कैलोरी ऊष्मा चाहिए। इसे संगलन की गुप्त ऊष्मा कहते हैं।

वाष्पोत्सर्जन, जलचक्र में, जल का पृथ्वी से वायुमण्डल में निम्नलिखित प्रक्रियाओं द्वारा स्थानांतरण है–(i) सतही जल एवं मिट्टी से वाष्पीकरण, (ii) पेड़-पौधों द्वारा उत्सर्जन।

आर्द्रता

जलवाष्प वायुमंडल में कम ही अनुपात में (0 से 4 प्रतिशत) मौजूद है, फिर भी यह मौसम और जलवायु के निर्णायक के रूप में हवा का सबसे प्रमुख घटक है। ल वायुमंडल में अपने तीनों रूपों में मौजूद रहता है। यह गैसीय अवस्था में जलवाष्प, ल अवस्था में जल की बूंदों तथा ठोस अवस्था में हिम-कणों के रूप में रहता वायुमंडल में मौजूद अदृश्य जलवाष्प की मात्रा को आर्द्रता कहते हैं।

WWW.GRADESETTER.COM

WWW.GRADESETTER.COM

गहरे रंग की वस्तुएं जैसे वनस्पतियां इत्यादि जल्दी शीतल होती हैं क्योंकि ये ऊष्मा की अच्छा अवशोषक होने के साथ-साथ अच्छी विकिरक भी होती हैं। धरातल पर ओस बनने हेतु निम्नलिखित दशाओं का होना आवश्यक है—

- आकाश का स्वच्छ बादलरहित होना ताकि शीत विकिरण से अधिक ऊष्मा प्राप्त हो सके और वाष्पीकरण ज्यादा हो, साथ ही रात को विकिरण के द्वारा वायुमंडल शीघ्र शीतल भी हो जाए।
- शांत स्थिर वायु ताकि उसके शीतलन में कोई बाधा न आ पाए और वायु का ओसांक 0° सेल्सियस से ऊपर हो।
- वायुमंडल में प्रचुर मात्रा में जलवाष्प या आर्द्रता की मौजूदगी।
- रात की अवधि का लंबा होना ताकि विकिरण और शीतलन के द्वारा वायुमंडल शीतल हो सके।

यही कारण है कि शीत ऋतु में विशेषकर नवंबर-दिसंबर में ज्यादा ओस बनती है।

तुषार या श्वेत-तुषार (*frost or white frost*): जब कभी धरातल पर तापमान हिमांक से भी नीचे आ जाता है तब वायुमंडल में व्याप्त जलवाष्प जलबूंदों में परिणत न होकर हिमकणों के रूप में बदल जाती है, जिन्हें तुषार या पाला भी कहते हैं और इसी रूप में धरातल पर गिरते हैं। यह फसलों के लिए बहुत हानिकारक होता है।

कोहरा (*fog*): कोहरे के निर्माण में वायुमंडल में मौजूद जलवाष्पों की सी भूमिका होती है। यह एक तरह का बादल होता है, जो धरातल के एकदम निकट होता है। धरातल से सटी जलवाष्प युक्त वायु जब बड़े पैमाने पर शीतल हो जाती है, तब उस वायु में लदे जलकणों के कारण वायुमंडल की पारदर्शिता या दृश्यता प्रभावित हो जाती है, जिसे कोहरा कहते हैं। कोहरे से दृश्यता सुबह या शाम को प्रभावित होती है पर कभी-कभी कोहरा दिन भर भी प्रभावी हो सकता है। कोहरे और बादल में मुख्य अंतर यह होता है कि कोहरे का निर्माण करने वाले जल कणों का व्यास 100 माइक्रॉन से कम होता है जबकि वर्षा के बूंदों का व्यास 400-1000 माइक्रॉन तक होता है अर्थात् कोहरे की बूंदें ज्यादा सूक्ष्म होती हैं। कोहरे को दो आधारों पर वर्गीकृत किया गया है—

(i) दृश्यता के आधार पर एवं
(ii) निर्माण विधि के आधार पर

दृश्यता के आधार पर कोहरे का वर्गीकरण • **सघन कोहराः** इसमें मीटर की दूरी पर स्थित वस्तुएं नहीं दिखती।

- *घना कोहराः* जिसमें दृश्यता की अधिकतम सीमा 180 होती है।
- *कोहराः* इसमें दृश्यता की सीमा 450 मीटर मानी जाती है।
- *सामान्य कोहराः* जिसमें दृश्यता-सीमा 900 मीटर होती है।
- *हल्का कोहराः* इसमें 108 मी. से अधिक की दृश्यता होती है।

निर्माण-विधि के आधार पर • **विकिरण कोहरा** (radiation में पार्थिव विकिरण के कारण धरातल से सटी वायु शीतल हो जाती है प्रकार के कोहरे का निर्माण होता है, उसे विकिरण कोहरा कहा स्थलीय कोहरा भी कहते हैं। विकिरण कोहरे के लिए साफ रात्रिक हल्की हवा तथा धरातल के निकट आर्द्र वायु जबकि उससे ऊपर चाहिए। विकिरण कोहरा ज्यादातर स्थल पर ही होता है क्योंकि स का तापांतर सागर की अपेक्षा ज्यादा होता है।

• ***अभिवहन कोहरा*** (*advection fog*): अभिवहन को की क्षैतिज गति के द्वारा होता है। यह कोहरा स्थल, जल दो है। स्थल पर अभिवहन कोहरे का जन्म तब होता है जब ग ठंडे धरातल से गुजरती है तब धरातल से सटी ठंडे वायु से है और कोहरा उत्पन्न हो जाता है। जल या महासागरों पर होता है, जब गर्म आर्द्र हवा शीतल समुद्री धारा के संपर्क धाराओं के प्रभाव में शीतल हवा आ जाए तब इसे समुद्री व कोहरे की उत्पत्ति के लिए वायु के तापमान तथा उसके न

ने साल की के अनुसंधान है और इस प्रकार मध्य f 1940 से इस धीमी न की तुलना में वेहद वों द्वारा वर्णन किया न हाउस गैसों पर उम्मीद की गई है। संभवतः अल-नीनो

ताप परिवर्तन चत तापमान ता होती है, के अध्ययन ता-मापन ग्नोमीटर्स

ायुदाब त्तविक करने क्षिक क्षेक र्ता

न र

...ता है जो जल के साथ संघनक का तेजाब बन जाता है। (iii) ...ाइड, विशेषकर नाइट्रिक ऑक्साइड।

...जल के द्वारा वायुमण्डल में नमक के अतिसूक्ष्म कण उपलब्ध ...द्वारा ये कण महाद्वीपों पर एकत्रित हो जाते हैं, जो जलग्राही ...करते हैं। वायुमण्डल की प्रति घन सेमी. हवा में 2,000 से ...जलग्राही नाभिक विद्यमान रहते हैं। इन नाभिकों का व्यास ...तक होता है।

...संघनन की हमेशा प्रक्रिया होती है जिसकी शुरुआत ...नाभिकों पर संघनन से ही हो जाती है। ये नाभिक अदृश्य जल की बूंदों में परिणित ...आर्द्रता से ही हो जाती है। वे नाभिक अदृश्य जल की बूंदों में परिणित ...सापेक्ष आर्द्रता शत-प्रतिशत (100%) हो जाती है, तो ये बूंदें ...होने लगती हैं। इस प्रकार वायुमण्डल में पहले धुंध, तदुपरांत कोहरा ...का निर्माण होता है।

विश्व के आर्द्रतम स्थल

	वर्षा (सेमी. में)	स्थल/देश	वर्षा (सेमी. में)
...(भारत)	1140.50	अंडागोया (कोलम्बिया)	713.74
...(हवाई)	492.76	मौलमीन (म्यांमार)	482.60
...(फ्रांस)	444.50	मोनरोविया (लाइबेरिया)	441.96
...(न्यूजीलैण्ड)	429.26	कुचिंग (मलेशिया)	391.16
...(इंग्लैण्ड)	355.60	फ्रीटाउन (सिएरा लिओन)	350.52

रुद्धोष्म ताप-परिवर्तन एवं स्थिरता

...ऊपर उठती है तो इसमें फैलाव होने से इसके आयतन में वृद्धि होती ...इसके प्रति इकाई आयतन में उपलब्ध ऊष्मा घटती है और इसलिए तापमान ...कमी होती है। इस प्रकार का ताप-परिवर्तन जिसका संबंध हवा के फैलाव ...ऊपर उठने से है, रुद्धोष्म ताप-परिवर्तन कहलाता है। हवा का ऊर्ध्वाधर ...रुद्धोष्म तथा अवरोही ताप-परिवर्तन का मुख्य कारण है।

...परिवर्तन की अधिकांश प्रक्रियाएं गैर-रुद्धोष्म होती हैं, ...संवहन के निकट परिवर्तन ही ...संचलन प्रायः मिश्रित वायु को जन्म देता है तथा उसके लक्षणों ...परिवर्तित कर देता है। ऊपर उठती वायु में तापमान के ह्रास की दर वायु ...पर निर्भर करती है। असंतृप्त वायु में, ऊंचाई के साथ तापमान ...दर संतृप्त वायु की अपेक्षा दुगुनी होती है। इसका मुख्य कारण संतृप्ति ...संघनन की गुप्त ऊष्मा का निर्मुक्त होना है। ऊपर उठती असंतृप्त वायु ...तापमान के ह्रास की दर 'शुष्क रुद्धोष्म दर' कहलाती है और संतृप्त वायु में ...रुद्धोष्म दर' कहते हैं।

गैर-रुद्धोष्म तापमान परिवर्तनः गैर-रुद्धोष्म प्रक्रियाओं में विकिरण, संवहन ...वायु के मिश्रण द्वारा शीतलन होना शामिल है। विकिरण द्वारा की गयी ...हानि के कारण वायु ठंडी हो सकती है। यदि नम वायु में सीधा विकिरण ...तो शीतलन से कुहरा एवं बादल पैदा होते हैं। एक ठंडी सतह पर गर्म ...संवहन या अभिवहन द्वारा भी शीतलन पैदा हो सकता है। ठंडी सतह ...संपर्क से पैदा शीतलन ओस, कुहरा या पाला का निर्माण करता है।

विकिरण, संवहन एवं मिश्रण द्वारा निर्मित शीतलन का प्रभाव वायुमंडल की ...परत तक सीमित रहता है। शीतलन की गैर-रुद्धोष्म प्रक्रियाएं मात्र ...ओस या पाला पैदा करती हैं। वे वर्षण की एक सुदृढ़ मात्रा पैदा करने ...होती हैं। गहन एवं विस्तृत वायु संहति के तापमान को घटाने (ताकि ...एवं पर्याप्त वर्षण संभव हो सके) वाली एकमात्र समर्थ प्रक्रिया है—ऊपर ...वायु धाराओं के साथ जुड़ा विस्तारण अथवा रुद्धोष्म शीतलन।

बादल और वर्षण

...सन्निकट की वायु में मौजूद जलवाष्प जब संघनन-प्रक्रिया के द्वारा ...परिणत हो जाते हैं, तो उन्हें *ओस* कहते हैं। यह मुख्य रूप से रात ...द्वारा धरातल से सही वायु-परत के शीतल होने के कारण बनती ...मौजूद जलवाष्प के कण प्रत्यक्ष संघनन द्वारा छोटी-छोटी बूंदों के ...पर या पौधों पर या घास पर गिर पड़ते हैं। धरातल पर मौजूद

WWW.GRADESETTER.COM

WWW.GRADESETTER.COM

बादलों से संबद्ध कुछ महत्वपूर्ण तथ्य

- बादलों के कई महत्वपूर्ण पक्ष हैं, जैसे—ऊंचाई, आकार, संघटना, संरचना, रंग निर्माण-प्रक्रिया इत्यादि।
- सभी बादलों से वर्षा नहीं होती।
- वे बादल जो वर्षा कराने से पहले वाष्पीकृत हो जाते हैं, जलवायु की दृष्टि से महत्वपूर्ण होते हैं।

किसी भी समय पृथ्वी का आधा भाग बादलों से आच्छादित रहता है, लेकिन उसके 3 प्रतिशत भाग पर ही वर्षा होती है।

ादल सौर विकिरण का अवशोषण और परावर्तन दोनों करते हैं।

र विकिरण के 30 प्रतिशत भाग का बादल अंतरिक्ष में परावर्तन कर देते हैं।

ल पार्थिव विकिरण का अवशोषण कर 'ग्रीन हाउस' प्रभाव' की भूमिका निभाते

ाथ ही वे अपने तापमान के अनुसार ऊष्मा का निरंतर उत्सर्जन भी करते हैं।

ं के कारण धरातल को वह ऊष्मा प्राप्त होती है, जो उनके अभाव में नष्ट हो

ती है।

दित आकाश किसी भी स्थान के दैनिक तापांतर को कम करते हैं।

निर्माण के लिए वायुमंडल का रुद्धोष्म या एडियाबेटिक तरीके से शीतल होना

चपूर्ण है।

की उत्पत्ति वायु की प्रबल तरंगों से होती है, उनका विकास लम्बवत् ज्यादा

वे धुनी हुयी रुई जैसे दिखते हैं।

ा निर्माण वायु के धीरे-धीरे ऊपर उठने से होता है, उनका विकास परतों

है।

WWW.GRADESETTER.COM

WWW.GRADESETTER.COM

(iii) सहिम वर्षा: यदि वर्षण के फलस्वरूप जल बूंदों के साथ-साथ अर्द्ध-हिमित या हिमित कणों की भी वर्षा हो तो उसे सहिम वर्षा कहते हैं।

(iv) हिमपात: यदि वर्षण के फलस्वरूप हिम कणों की वर्षा होती है। ऐसा तब होता है जब संघनन जमाव बिंदु से नीचे होता है जिसके कारण जल वाष्प से हिम के छोटे-छोटे कण सीधे बन जाते हैं।

सामान्यतः ये छोटे कण आपस में मिल जाते हैं व विभिन्न आकारों में गिरते हैं।

(v) ओलावृष्टि: यदि वर्षण के फलस्वरूप हिम-गोले बन जाते हैं तो उन्हें ओले व भू-पृष्ठ पर इनके गिरने को ओलावृष्टि कहते हैं। सामान्यतः ये कपासी वर्षा मेघों में बनते हैं।

वर्षण की दशाएं

वर्षण की उत्पत्ति के निम्नलिखित मार्ग हैं:

(i) संवहनीय वर्षण: संवहनीय वर्षा वायुमंडल के निम्न स्तर में नम वायु के गर्म होने से होती है। निम्न स्तर में वायु गर्म होने से यह ऊपर उठती है, फैलती है एवं रुद्धोष्म तौर पर ओस विंदु तक ठण्डी होती है। अति उच्च कपासी वर्षा मेघों से भी संवहनीय वर्षा हो सकती है। संवहनीय वर्षा के साथ कभी-कभी गरज-चमक भी होती है। उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में ऐसी वर्षा के साथ प्रायः मूसलाधार वर्षा होती है। भूमध्य रेखा के क्षेत्रों के निकट संवहनीय वर्षा उच्च ताप व आर्द्रता के कारण दोपहर में होती है। यह भूमध्यरेखी क्षेत्रों व मानसून जलवायु क्षेत्रों में आम है।

(ii) पर्वतीय वर्षण: पर्वतीय क्षेत्रों में आर्द्र वायु पर्वत शृंखलाओं की उपस्थिति के कारण ऊपर उठने पर मजबूर होती है जिसके कारण रुद्धोष्म प्रक्रिया में वे धीरे-धीरे ठण्डी होती जाती है व इसी के फलस्वरूप पहाड़ों पर वर्षा होती है। वर्षा के उपरांत ये हवा जब प्रति पवन (leeward) दिशा में उतरती है तो गर्म होने लगती है परंतु इन हवाओं को आर्द्रता पुनः ग्रहण करने का स्रोत नहीं मिल पाता है। जिसके कारण प्रतिपवन दिशा में मौसम गर्म व शुष्क होता है। शुष्क जलवायु की बैल्ट को प्रायः रेनशैडो (वृष्टि छाया) कहते हैं और ऐसे क्षेत्र प्रति पवन दिशा में अस्तित्वमान रह सकते हैं। विश्व के अनेक मरुस्थल इसी प्रकार के हैं। ब्रिटेन, कोलम्बिया (कनाडा) व स्कॉटलैण्ड की समुद्र तटीय हवाएं, तट के समांतर फैले पर्वतों पर ऊपर उठ कर पर्वतीय वर्षण करती है। अमेरिका में पछुवा हवाएं प्रशांत सागर से नमी लेकर मध्य व उत्तरी कैलीफोर्निया व ग्रेट सियरा नेवादा पर्वतमाला पर भारी वर्षा करती है। सियरा की समुद्र की ओर की पहाड़ियों पर भारी वर्षा होती है। जबकि प्रतिपवन दिशा में जब ये हवाएं उतरती हैं तो शुष्क हो जाती हैं व सियरा का पूर्वी भाग खुश्क रहता है। इसी कारण यह अमेरिका के महान रेगिस्तानी क्षेत्र की रचना करता है। पर्वतीय वर्षा अधिकांशतः संवहनीय प्रकार की वर्षा होती है जिसके अंतर्गत गरज-चमक के साथ भारी वर्षा होती है। इस प्रकार की वर्षा मानसूनी वर्षा की तीव्रता को बढ़ा देती है। भारत में खासी पहाड़ियों की हवा के रुख वाले ढलानों पर भारी वर्षा मानसूनी व संवहनीय वर्षा के सम्मिलित प्रभाव के कारण होती है।

(iii) चक्रवाती वर्षण: चक्रवाती वर्षा तब होती है जब दो विभिन्न तापमानों की वायु राशियां मिलती हैं व जिसके फलस्वरूप अवनमन (depression) या वाताग्र (frontal) की स्थिति उत्पन्न होती है। जब दो विभिन्न वायु राशियां मिलतीं हैं तब गर्म नम वायु ठण्डी भारी वायु के ऊपर आ जाती है एवं वाताग्र का निर्माण होता है। वाताग्र निर्माण के लिए दो शर्तें अवश्य पूरी होनी चाहिए पहला, वाताग्र निर्माण करने वाली वायु राशियों का तापमान भिन्न व दिशा विपरीत होनी चाहिए व दूसरी, एक वायु राशि ठण्डी भारी व शुष्क होनी चाहिए एवं दूसरी वायु राशि अति गर्म, हल्की व आर्द्र होनी चाहिए। जब ये आपस में मिलती है तो एक-दूसरे के क्षेत्र में प्रविष्ट होने के प्रयास करती हैं और वर्षा होती है।

चक्रवाती वर्षण किसी क्षेत्र में वायु के कम दबाव की स्थिति में विभिन्न दिशाओं से वायु के निम्न दबाव क्षेत्र की ओर क्षैतिज अभिसरण (convergence) से भी होती हैं। चक्रवाती वर्षा डोलड्रमों पर सामान्य रूप से होती है क्योंकि यहां व्यापारिक हवाएं (trade winds) मिलती हैं। मध्य व उच्च अक्षांशों में वाताग्रों के समांतर वर्षण होती है। उष्ण कटिबंधीय क्षेत्रों में चक्रवातों के कारण भारी वर्षा होती है

WWW.GRADESETTER.COM

WWW.GRADESETTER.COM

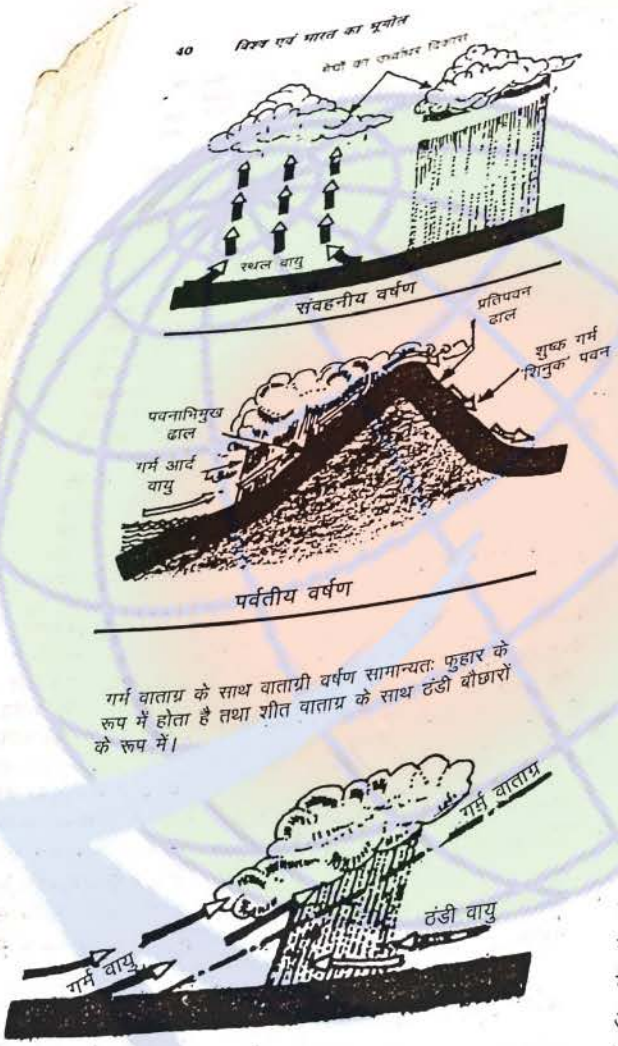

गर्म वाताग्र के साथ वाताग्री वर्षण सामान्यतः फुहार के रूप में होता है तथा शीत वाताग्र के साथ ठंडी बौछारों के रूप में।

वाताग्री वर्षण

विभिन्न प्रकार के वर्षण

परंतु यह वर्षा मात्र कुछ घण्टे तक ही जारी रह पाती है। शीतोष्ण प्रदेशों में चक्रवाती वर्षा कई घंटों व कभी-कभी कई दिनों तक जारी रहती है।

(iv) तड़ित तूफान: यह तीव्र स्थानीय प्रकृति का तूफान होता है जिसके थ गरज-चमक होती है एवं जो कपासी वर्षा मेघों में विकसित होते हैं। तूफान, न, चमक इत्यादि वायु की अस्थिर परिस्थितियों में तीव्र आरोहण के कारण न होती हैं। ये परिस्थितियां या तो अवनमन (depression) के शीताग्र बनने रण या तब उत्पन्न होती है जब भूमि अत्यधिक गर्म हो जाती है व वायु निर्माण के लिए पर्याप्त नमी उपस्थित रहती है। भूमध्यरेखीय क्षेत्रों में ये ं सामान्य तौर पर उत्पन्न हो जाती है क्योंकि भूमध्यरेखीय क्षेत्र में वायु सामान्यतः अति नम होती है व सूर्य की गर्मी वायु में आवश्यक अस्थिरता उत्पन्न कर देती है। इन क्षेत्रों में अत्यधिक भारी वर्षा होती है जिसके साथ कि कभी बनती है।

तूफान के कारकों को वायु स्तंभ में आरंभिक उठाव के आधार पर निम्नलिखित प्रकारों में वर्गीकृत किया जा सकता है—

(i) वायु राशि तड़ित तूफान: भूमि के तीव्र सूर्य आपतन के कारण संवहन द्वारा वायु की निचली परत के कारण वायु राशि तड़ित तूफान उत्पन्न होता है। ये सामान्यतः दोपहर में उत्पन्न होता है जब सतह के निकट तापमान सर्वाधिक होता है।

(ii) पर्वतीय तड़ित तूफान: यह तब उत्पन्न होता है जब वायु राशि पर्वतीय ढलानों पर ऊपर उठती है। एशिया व पूर्वी भारत के पर्वतों पर होने वाली मूसलाधार मानसूनी वर्षा अधिकांशतः इसी प्रकार की होती है।

(c) वाताग्र तड़ित तूफान: यह तब होता है जब उष्म वायु राशि को ठण्डी वायु राशि के ऊपर आने पर मजबूर किया जाता है।

वर्षण का भौगोलिक वितरण

अक्षांश से उपोष्ण कटिबंध तक

भूमध्य रेखीय या अक्षांशीय वर्षा की पेटी: इस पेटी का विस्तार भूमध्य रेखा के दोनों ओर 10 अक्षांशों तक पाया जाता है। यह प्रदेश अंतरा उष्ण कटिबंधीय अभिसरण के अंतर्गत आता है जहां पर गर्म, आर्द्र वायु राशियां होती हैं। यहां वार्षिक वर्षा का औसत 175 से 200 सेमी. तक होता है। अटलांटिक महासागर एवं प्रशांत महासागर के पूर्वी भाग में इस प्रवृत्ति का स्थानांतरण नगण्य होता है तथा इसका विस्तार 10° अक्षांश से अधिक नहीं होता। इस पेटी में स्थित विश्व के प्रमुख क्षेत्र इस प्रकार हैं—दक्षिणी अमेरिका की अमेजन घाटी, मध्य अमेरिका का वायु अभिमुख तटवर्ती क्षेत्र, अफ्रीका की कांगो बेसिन का मध्यवर्ती भाग, न्यू गिनी, फिलीपींस एवं मेडागास्कर के पूर्वी तटीय भाग।

लेकिन याद रहे कि 0° से 10° दक्षिणी अक्षांश की अपेक्षा 0° से 10° उत्तरी अक्षांश वाले भाग में वर्षा अधिक होती है, क्योंकि अंतरा उष्ण कटिबंधीय अभिसरण वर्ष भर प्रायः भूमध्य रेखा के उत्तर दिशा में ही रहता है।

व्यापारिक वर्षा वाली पेटी: इसका विस्तार भूमध्य रेखा के दोनों ओर 10°-20° अक्षांशों के मध्य पाया जाता है। यह प्रदेश व्यापारिक पवनों की पेटी में आता है जो सागरों के ऊपर से आने के कारण महाद्वीपों के पूर्वी भागों में वर्षा करती है, लेकिन महाद्वीपों के ऊपर चलने के कारण पश्चिमी भागों में शुष्क हो जाता है, जिसके कारण मौसम शुष्क होता है तथा रेगिस्तान पाये जाते हैं। दक्षिणी पश्चिमी अफ्रीका तो पूरी तरह से मरु प्रदेश है जहां बिल्कुल वर्षा नहीं होती। इसी प्रकार अन्य महाद्वीपों जैसे, आस्ट्रेलिया तथा दक्षिणी अमेरिका के पूर्वी तथा पश्चिमी भागों में वर्षा में काफी अंतर पाया जाता है।

उपोष्ण कटिबंधीय न्यूनतम वर्षा पेटी: इसका विस्तार भूमध्य रेखा के दोनों ओर 20°-30° अक्षांशों के मध्य पाया जाता है, जहां पर हवाएं ऊपर से नीचे आती हैं तथा उच्च दाब बनाने के कारण धरातल पर दो विपरीत दिशाओं में चलने लगती हैं। यहां वर्षा का औसत 90 सेमी है। उल्लेखनीय है कि इन्हीं अक्षांशों में विश्व के सभी उष्ण रेगिस्तान आते हैं, जहां पर वर्षा का वार्षिक औसत 25 सेमी. से भी कम होता है।

मध्य अक्षांश से ध्रुवीय तक

मध्य अक्षांशीय वर्षा वाली पेटी: दोनों गोलार्द्धों में 40°-60° अक्षांशों के मध्य पछुवा पवनों के कारण 100 से 125 सेमी. तक वर्षा होती है। इन्हें 'द्वितीय अधिकतम वर्षा की पेटी' कहते हैं। महाद्वीपों के पश्चिमी भागों में वर्षा अधिक होती है तथा आंतरिक भाग में घटती जाती है। उत्तरी गोलार्द्ध की अपेक्षा दक्षिणी गोलार्द्ध में (सागर के अधिक विस्तार के कारण) वर्षा अधिक होती है।

ध्रुवीय निम्न वर्षा वाली पेटी: $66\frac{1}{2}°$ से 90° अक्षांशों के मध्य दोनों गोलार्द्ध में ध्रुव प्रदेश स्थित है। ध्रुव प्रदेशों में वर्ष भर तापमान अत्यधिक निम्न (प्र हिमांक से नीचे) रहता है तथा प्रतिचक्रवातीय दशाओं के कारण सर्वत्र बहुत वर्षा हिम वर्षा के रूप में होती है।

WWW.GRADESETTER.COM

WWW.GRADESETTER.COM

जैसे-जैसे वायु तापक्रम में वृद्धि होती है वर्षण के हिमपात की तुलना में वृष्टि के रूप में अधिक होने की संभावना होती है। यह बात विशेष रूप से शरद एवं वसंत ऋतु के दौरान सही है तथा ऐसे स्थानों में जहां तापक्रम हिमांक के पास मंडराता है।

वर्षण के प्रकार में परिवर्तन विभिन्न स्थानों पर देखा गया, लेकिन यह परिवर्तन विशेष रूप से उत्तरी गोलार्द्ध के मध्य एवं उच्च अंक्षाशों में हुआ है। वृष्टि में वृद्धि का अर्थ हुआ कि हिमखण्डों में कमी तथा शुष्क ग्रीष्म महीनों में जलापूर्ति की कमी का प्रबंध करने में कठिनाई होना। उदाहरण के लिए ग्रीष्मकाल में कैलिफोर्निया अपनी जलापूर्ति के लिए साइरा पर्वत की हिमराशि पर निर्भर रहता है। वर्षण प्रारूप में परिवर्तन के परिणामस्वरूप नवीन परिवर्तनों एवं अवसंरचना की आवश्यकता होगी कि जल स्रोतों का किस प्रकार प्रबंध किया जाए। जलप्रबंधकों को जलापूर्ति के लिए तालाबों को भरने की आवश्यकता या शीतकाल बाढ़ नियंत्रण द्वारा जलाशय क्षेत्र की व्यवस्था करने की जरूरत को संतुलित करना पड़ेगा।

वैश्विक तापन के परिणामस्वरूप आगामी शताब्दी में मानसून सम्बद्ध वर्षण में परिवर्तन की भविष्यवाणी की गई है। मॉडल पश्चिम अफ्रीकी मानसून के दक्षिणी हिस्से और एशियाई मानसून के लिए वर्षण वृद्धि तथा अंर्तवार्षिक वर्षण विभिन्नता की भविष्यवाणी करता है। उत्तरी ग्रीष्म में साहेल में वर्षण में कमी की संभावना है। आस्ट्रेलियन मानसून में वर्षण के बढ़ने की संभावना व्यक्त की गई है। पूर्वी विषुवतीय प्रशांत में वाकर संचरण और स्थानीय हेडली सेल संचरण में परिवर्तन से वर्षण में वृद्धि होगी जिसके परिणामस्वरूप मैक्सिको तथा मध्य अमेरिका में मानसून वर्षण में कमी की संभावना व्यक्त की गई है।

7. मौसम और जलवायु

मौसम

किसी स्थान और समय विशेष पर वायुमण्डलीय स्थिति है जिसका निर्धारण तापमान सम्बंधी परिघटनाओं से होता है। मौसम विज्ञान सम्बंधी परिघटनाओं वर्षण, वायु, मेघ, धूप, दाब, दृश्यमानता, और वर्षा इत्यादि शामिल हैं।

संहति और अग्र

संहति वह वायु समूह है जिसमें नमी और तापमान की ऊर्ध्वगामी प्रवणता क्षैतिज क्षेत्र में समरूप होती है। एकल वायु संहित, जहां अपने विस्तार क्षेत्र उपमहाद्वीप के आकार की हो सकती है, वहीं ऊर्ध्वाधर दिशा में इसका क्षोभमण्डल तक हो सकता है। वायु संहति तापमान, पर्यावरणीय ह्रास आर्द्रता के विशिष्ट संयोगों से अभिलक्षणित होता है। इसलिए संहतियों में तापमान और आर्द्रता-अंश में व्यापक रूप से विभेद हो सकता है। वायु संहति का निर्माण तब होता है जब एक वायु समूह, एक समांग स्रोत क्षेत्र (विस्तृत भूमि या जल क्षेत्र) के ऊपर कुछ काल के लिये ठहरता है। वायु संहति भूमि का एक अंश उस सतह से प्राप्त करती है जिसके ऊपर से वह गुजरती है। स्थान विशेष पर किसी विशेष वायु संहति की विशेषताएं, अपने हजारों वर्ष पर विचरण के काल में कभी भूमि व कभी समुद्र की सतह के ऊपर प्रभाव को परावर्तित करती है। भूमध्यरेखीय व उष्णकटिबंधीय संहति भूमि व समुद्र के ऊपर विचरण करने की साधारण विशेषताएं है। यहां वायु सहांति मंद गति से चलती है और उसकी प्रवृत्ति भी है। शीतकाल में, शीतल बर्फ से आच्छादित आर्कटिक क्षेत्रों निचली परत शीतल और न्यून जल-वाष्प युक्त होती है। गर्म सतह के ऊपर वायु संहति की निचली परत में तीव्र पर्यावरणीय उच्च जल-वाष्प भी पायी जाती है। उष्णकटिबंधीय रेगिस्तान का तापमान उच्च होता है और सापेक्षता न्यून आर्द्रता लिये

त्र से दूसरे क्षेत्र में वायुमण्डलीय-दाब के पैटर्न पर विचरण की प्रक्रिया में वायु संहति की निचली परत रूपांतरित हो जाती है। रूपांतरण के दौरान यह सतह से ऊष्मा का त्याग या ग्रहण करती है साथ ही जल-वाष्प का भी त्याग करती है।

वायु संहति को सामान्यीकृत स्रोत क्षेत्रों के आधार पर दो भागों में विभाजित किया गया है। (i) भूमण्डल पर अक्षांशीय स्थिति, ऊष्मीय गुण धर्म को निर्धारित करती है (ii) निचली सतह (जो भूमि या समुद्र हो सकती है) आर्द्रता को निर्धारित करती है। यह वर्गीकरण तापमान (उष्ण-कटिबंधीय या ध्रुवीय) और आर्द्रता (नमी) पर आधारित है।

विभिन्न स्रोतों से उत्पन्न वायु संहति तापमान और आर्द्रता के गुण-धर्म में विभिन्नता पाई जाती है और इन विभिन्न वायु संहति के मध्य सीमांत क्षेत्र बनता है। जहां यह सीमांत क्षेत्र पृथ्वी की सतह को काटता है वहां एक विभाजन रेखा का निर्माण होता है जिसे अग्र कहते हैं। इसे मौसम-चार्ट में रेखाओं द्वारा प्रदर्शित किया जाता है। अग्र का निर्माण सामान्यतः न्यून दबाव द्रोणिका के निर्माण से जुड़ा है। न्यून दबाव द्रोणिका बेहद महत्वपूर्ण होती है क्योंकि इसके जन्म से यथेष्ठ मौसम परिवर्तन होते हैं। यदि एक वायु संहति दूसरे के ऊपर फिसलती है तं अग्र लगभग क्षैतिज होता है।

शीताग्रः उष्ण निवर्तनी वायु संहति और शीतल अग्रवर्त्ती वायु संहति अलग करने वाला अग्र शीताग्र है। शीतल वायु भारी होने के कारण सतह निकट रहती है और उष्ण वायु को ऊपर उठने के लिए विवश कर देती है। शी उष्णाग्र के सापेक्ष अतिप्रवण होता है साथ ही यह सशक्त वायुमण्डल उथल से संबद्ध है। शीत अग्र के निर्माण से दबाव बढ़ता है, तापमान कम होता तेज वर्षा के साथ बिजली चमकती है।

उष्णाग्रः शीतल निवर्तनी वायु संहति और उष्ण अग्रवर्त्ती वायु अलग करने वाला अग्र उष्णाग्र होता है। इस स्थिति में भी उष्ण वायु है। उष्णाग्रों की प्रवणता कम होती है और ये सामान्यतः स्थिर व परिस्थितियों से संबद्ध हैं, शीताग्रों की भांति वायु-विक्षोभ उष्णाग्रों नहीं बनते। यदि उष्ण-वायु अस्थिर हो तो इसके परिणामस्वरूप गरज के साथ तूफान आता है। उष्णाग्र से संबद्ध मौसम प्रभाव को से पूर्व ही महसूस किया जा सकता है। इसके आगमन का प्रथ

WWW.GRADESETTER.COM

WWW.GRADESETTER.COM

पश्चाभ-मेघ से मिलता है, जो कि क्रमिकतः नीचे आ कर घने होते जाते हैं और निम्न पश्चाभ-स्तरी-मेघ में परिवर्तित हो जाते हैं। इसके नीचे मध्य-स्तरीय मेघ में और सबसे नीचे अग्र पर वर्षा करने वाले वर्षास्तरीय मेघ में परिवर्तित हो जाते हैं। जैसे-जैसे अग्र आगे बढ़ता है वैसे-वैसे तापमान व आर्द्रता बढ़ती है, दबाव का गिरना बंद हो जाता है और हवाओं के रुख में परिवर्तन होता है।

आक्लूडेड अग्र: जब चक्रवाती तूफान निर्माण के विकास के अंतिम चरणों में, तीव्र गति से घूमते शीताग्र, उष्णाग्र के साथ आगे बढ़ता है तो उष्ण क्षेत्र को सतह से ऊपर उठा होता है, उस समय आक्लूडेड अग्र का निर्माण होता है। पश्चिमी यूरोप के देशों में यह सामान्य घटना है। आक्लूडेड अग्र से संबद्ध मौसम, भूत अग्र के मौसम के समान ही होता है लेकिन यह अंततः समाप्त हो जाता है जबकि उष्ण क्षेत्र में वायु ऊपर उठकर शीतल हो जाती है।

स्थिराग्र: स्थिराग्रों का निर्माण तब होता है जब उष्णाग्र व शीताग्र एक दूसरे को प्रतिस्थापित नहीं कर पाते हैं। स्थिराग्रों पर कई दिनों तक वर्षा होती है।

वायु राशि

वायुमण्डल में उपस्थित वायु की विशाल राशि जो अपने भौतिक गुणों, विशेषकर तापमान, आर्द्रता और क्षैतिज तल में लगभग एक समान हो, वायुराशि कहलाती है। वस्तुतः वायु राशि वायुमण्डल का एक सघन एवं विस्तृत भाग है, जिसमें ताप तथा आर्द्रता-संबंधी विशेषताएं विभिन्न स्तरों पर एक क्षैतिज दिशा में लगभग समान रहती हैं। इनका फैलाव हजारों वर्ग कि.मी. के क्षेत्रफल में हो सकता है। वायुराशियों के जन्म के लिए विशाल वायु पुंज का किसी विस्तृत समांगी तल (जल या स्थल) पर लंबी अवधि तक स्थिर रहना जरूरी है। इससे उसके तापमान, आर्द्रता आदि में धरातल के साथ संतुलन स्थापित हो जाता है। जिन क्षेत्रों में वायु का क्षैतिज अपसरण (horizontal divergence) होता है, वहां वायुराशि के विकास का अवसर ज्यादा होता है।

वायुराशि में कई परतें होती हैं। सभी परतों की दशा हर स्थान पर लगभग एक समान होती है। दूसरी तरफ वायु राशियों की सबसे बड़ी विशेषता है कि तापमान तथा आर्द्रता आदि विशेषताओं के संबंध में उनकी स्वतंत्र पहचान होती है। अलग-अलग घनत्व की वायु राशियां भी एक-दूसरे के संपर्क में आने पर एक-दूसरे में विलीन नहीं होतीं, वरन् वे एक-दूसरे से अलग अपनी पहचान बनाए रखती हैं। अर्थात्, इनके बारे में कहा जा सकता है कि उनका स्थानांतरण चाहे जहां भी हो, वे अपना मौलिक स्वरूप पहले की ही तरह बनाए रखती हैं। इनके बारे में यह तथ्य भी उल्लेखनीय है कि एक बार उत्पन्न हो जाने के बाद वायु राशियां उद्गम क्षेत्र पर स्थिर नहीं रह पाती हैं। वे सदा आगे प्रवाहित होती हैं और अपने प्रभाव क्षेत्र या संपर्क में आने वाले स्थानों के तापमान और आर्द्रता को प्रभावित करती हैं। इस प्रक्रिया में स्थानीय धरातल और वायुमण्डलीय दशाओं के कारण इनमें भी परिवर्तन होता है लेकिन वह नगण्य होता है।

वायु राशियों की उत्पत्ति की आदर्श दशाएं

- विस्तृत और समान स्वभाव अर्थात् तापमान और आर्द्रता वाला क्षेत्र। उत्पत्ति क्षेत्र पूर्णरूप से सागरीय हो या स्थलीय।
- वायु का अभिसरण न होकर अपसरण होना चाहिए। अगर उसकी गति तिज हो। अभिसरण से वायु में तापीय विषमताएं उत्पन्न हो जाती हैं।
- वायुमण्डलीय स्थितियां लंबी अवधि तक एक समान या स्थिर रहनी ाहिए।

राशि-उत्पत्ति-क्षेत्र

पर ऐसे 6 क्षेत्र हैं, जो वायुराशि की उत्पत्ति के आदर्श क्षेत्र हैं:

धुव्रीय सागरीय भाग (अटलांटिक एवं प्रशांत महासागर के उत्तरी क्षेत्र शीतकाल में)।

ुवीय तथा आर्कटिक महाद्वीपीय क्षेत्र (यूरेशिया तथा उत्तरी अमेरिका हिमक्षेत्र, आर्कटिक प्रदेश शीतकाल में)।

ा कटिबंधीय सागरीय क्षेत्र (प्रति चक्रवात क्षेत्र-शीत और ग्रीष्म काल

(iv) उष्ण कटिबंधीय महाद्वीपीय क्षेत्र (उत्तरी अफ्रीका, एशिया, राज्य अमेरिका का मिसीसिपी घाटी क्षेत्र—ग्रीष्मकाल में ज्यादा

(v) भूमध्यरेखीय क्षेत्र (व्यापारिक हवाओं के बीच स्थित भूमध्यरेखीय भर)।

(vi) मानसूनी क्षेत्र (द.पू. एशिया)।

वायुराशियों के प्रकार

मुख्य रूप से वायु राशि दो प्रकार की होती है। शीतल या ठंडी वायुराशि गर्म या उष्ण वायुराशि। धरातल की तुलना में कम तापमान वाली वायु राशि शीत वायुराशि कहलाती है, जबकि अधिक तापमान वाली वायुराशि गर्म या उष्ण वायुराशि कहलाती है।

वायुराशियों का वर्गीकरण

वायुराशियों का वर्गीकरण करते समय उनके उत्पत्ति-क्षेत्र, उनकी मौसमी दशाओं तथा मार्ग में उनमें होने वाले ऊष्मा गतिक तथा यांत्रिक परिवर्तनों को भी ध्यान में रखा जाता है। वायुराशि के वर्गीकरण के दो प्रमुख आधार हैं—(1) उत्पत्ति क्षेत्र की स्थिति तथा (2) तल की प्रकृति।

वायुराशियों का वर्गीकरण दो शीर्षकों के अंतर्गत किया जा सकता है, जो निम्नलिखित हैं:

I. भौगोलिक वर्गीकरण: इस वर्गीकरण के अंतर्गत वायुराशियों का वर्गीकरण उद्गम क्षेत्र के आधार पर किया जाता है, जिसके अनुसार धरातल पर मुख्य रूप से दो प्रकार की वायु राशियां हैं, जिनका पुनः उपविभाजन किया जा सकता है:

(क) उष्ण कटिबंधीय वायुराशि (T): ऐसी वायुराशियों की उत्पत्ति महाद्वीपों या महासागरों के उष्ण कटिबंधीय क्षेत्रों में ही होती है। इसके दो उप प्रकार हैं:

(a) महाद्वीपीय उष्ण कटिबंधीय (CT)

(b) महासागरीय उष्ण कटिबंधीय (MT)

(ख) ध्रुवीय वायुराशि: इन वायुराशियों की उत्पत्ति महाद्वीपों या महासागरों के ध्रुवीय क्षेत्रों में होती है। इसके भी दो उप प्रकार हैं—

(a) महाद्वीपीय ध्रुवीय (CP)

(b) महासागरीय ध्रुवीय (MP)

T	=k	Tropical	उष्णकटिबंधीय
P	=k	Polar	ध्रुवीय
C	=k	Continental	महाद्वीपीय
M	=k	Maritime	महासागर

उपर्युक्त अंग्रेजी के बड़े अक्षरों का सांकेतिक रूप में वर्गीकरण में प्रयोग किया गया है।

II. ऊष्मागतिक वर्गीकरण: वायुराशि अपनी उत्पत्ति के पश्चात् अपने उद्गम प्रदेश की तापमान तथा आर्द्रता संबंधी विशेषताओं को ग्रहण कर लेती है। आगे बढ़ने के बाद यह अपने मार्ग में पड़ने वाले धरातलीय क्षेत्र की भौम दशाओं को प्रभावित करने के साथ स्वयं भी प्रभावित होती है, उसके ताप एवं आर्द्रता में भी परिवर्तन आ जाता है। इन परिवर्तनों के तीन आधार हैं- सतह या धरातल का स्वभाव (ii) उद्गम क्षेत्र से प्रभावित क्षेत्र तक वायु का भ्रमण पथ, एवं (iii) उत्पत्ति क्षेत्र से प्रभावित क्षेत्र तक पहुंचने की या दिनों की संख्या।

अगर वायुराशि की निचली परत का तापमान उस सतह से अधि है, तो वायुराशि नीचे से शीतल हो जाती है, फलतः उसमें स्थिरता (s आ जाती है और उसकी लम्बवत गति रुक जाती है। इसके ठीक वि वायु राशि की निचली परत का तापमान उस सतह से कम होता है, त के तापमान को ग्रहण कर गर्म हो जाती है, परिणामस्वरूप उसमें त पैदा होती है और वह अस्थिर हो जाती है, जिससे वर्षा इत्यादि प्र शुरुआत होती है। इस प्रकार धरातल के तापमान से वायुराशि में है, वह स्थिर या अस्थिर होती है, उसमें आरोहण या अवरोहण गति उष्मागतिक परिवर्तन कह सकते हैं।

WWW.GRADESETTER.COM

WWW.GRADESETTER.COM

वाताग्रों का वर्गीकरण

विभिन्न विशेषताओं पर आधारित वाताग्र को 4 भागों में विभाजित किया जाता है।

(i) स्थिरवत् वाताग्र (quasi-stationary front): इस वाताग्र की विशेषता यह है कि वायु राशियों में जब किसी प्रकार की गति नहीं होती है, तब उनके बीच का वाताग्र कुछ समय के लिए स्थिर हो जाता है। धरातल के जिस हिस्से पर स्थिरवत् वाताग्र का विकास होता है, वहां आकाश कई दिनों तक मेघाच्छादित रहता है तथा फुहार या वर्षा होती है। वाताग्र के कारण उत्पन्न मौसम तब तक बना रहता है, जब तक कि उसके दोनों तरफ की वायुराशियों में समानता न आ जाए या फिर दोनों वायुराशियां उस स्थान से आगे बढ़ न जाएं।

(ii) शीत वाताग्र (cold front): शीत वाताग्र में शीतल वायुराशि ज्यादा प्रभावी होती है। इस वाताग्र में शीतल वायु, गर्म वायु को प्रतिस्थापित कर देती है जिससे वायुमण्डल में विक्षोभ की उत्पत्ति होती है। वस्तुतः, जब शीतल वायु आक्रामक होती है, तब वह गर्म वायु को ऊपर धकेल देती है या उठा देती है। शीतल वायु राशि के बढ़ते हुए किनारे को ही शीत वाताग्र कहते हैं, जिसमें शीत वाताग्र पर उष्ण वायु का शीतल वायु के ऊपर निष्क्रिय आरोहण होता है। इसका ढाल 1 : 25 से 1 : 100 तक होता है।

(iii) उष्ण वाताग्र (warm front): उष्ण वाताग्र उस वाताग्र को कहते हैं, जिसमें धरातल से उष्ण या गर्म वायु काफी सक्रिय, आक्रामक और प्रबल होकर शीत वायु के ऊपर चढ़ जाती है। इसमें पश्चिम से पूर्व की ओर चलने वाले मध्य अक्षांशीय चक्रवातों में पूर्व की ओर आगे बढ़ने वाली उष्ण कटिबंधीय वायुराशि अपने अग्र भाग में शीतल वायु राशि के ऊपर क्रमशः चढ़ती है। उष्ण वाताग्रों का झुकाव 1 : 100 से 1 : 400 होता है।

(iv) संशोधित वाताग्र (occluded front): संशोधित वाताग्र को अधिविष्ट वाताग्र भी कहा जाता है। इस वाताग्र का निर्माण तब होता है, जब शीत वाताग्र अपनी प्रबल गति से उष्ण वाताग्र तक पहुंचकर उससे मिल जाता है तब शीतल वायु राशि, गर्म वायुराशि के ऊपर चढ़ जाती है। ठंडी वायुराशि गर्म वायु को उत्तर पूर्व एवं उत्तर-पश्चिम से घेर लेती है, तथा गर्म वायु को धरातल से ऊपर उठा देती है, परिणामस्वरूप गर्म वायु का धरातल से सपंर्क समाप्त हो जाता है।

विश्व के प्रमुख वाताग्र-प्रदेश

ग्लोब पर मुख्यतः तीन वाताग्र प्रदेश मिलते हैं:

(i) ***आर्कटिक वाताग्र प्रदेशः*** इस प्रदेश में सागरीय ध्रुवीय तथा महाद्वीपीय ध्रुवीय वायुराशियों के मिलने से वाताग्र का निर्माण होता है, जो अधिक सक्रिय नहीं होते हैं। यूरेशिया तथा उत्तरी अमेरिका इसके प्रभाव क्षेत्र हैं।

(ii) ***ध्रुवीय वाताग्र प्रदेशः*** ये शीतकालीन सक्रियता वाले वाताग्र हैं, जिनका निर्माण 30° से 45° अक्षाशों के बीच ध्रुवीय शीतल एवं उष्णकटिबंधीय गर्म वायुराशियों के मिलने से होता है। इसका विस्तार उत्तरी अटलांटिक एवं उत्तरी प्रशांत महासागरों पर ज्यादा है।

(iii) ***अन्तः उष्णकटिबंधीय वाताग्र प्रदेशः*** इसका निर्माण विषुवत रेखीय-न्यून दाब क्षेत्र में उ.पू. एवं द.पू. व्यापारिक पवनों के मिलने से होता है। वाताग्र प्रदेश ग्रीष्म में उत्तर तथा शीत में थोड़ा दक्षिण की ओर खिसकते हैं।

चक्रवात

तरंग चक्रवात

मध्य अक्षांशों में मौसम की परिवर्तनशील प्रकृति इस हिस्से में मध्य अक्षांश उष्णकटिबंधीय चक्रवातों की उपस्थिति के कारण है। क्योंकि यह चक्रवात महासागरीय तरंग के रूप में होता है जब यह पूरी तरह विकसित हो जात इसलिए इसे सटीक रूप में **"तरंग चक्रवात"**, कहा जाता है। तरंग चक्रवात व अनुपात में बढ़ सकता है, जो लगभग 1,000 मील (1,600 किमी.) तक हो सकता है। निम्न वायुदाब का यह व्यापक क्षेत्र ध्रुवीय सीमाग्र (दे वायुराशियों को अलग करने वाली सीमा सतह) के साथ-साथ उत्पन्न होत उत्तर से चलने वाली शीत ध्रुवीय वायु दक्षिण की गर्म उष्णकटिबंधीय

WWW.GRADESETTER.COM

WWW.GRADESETTER.COM

टकराती है। इस प्रक्रम में, विशाल चक्राकार तूफान धरातल पर चलायमान होता है जो ध्रुवीय सीमाग्र जेट स्ट्रीम द्वारा निर्देशित होता है।

चक्रवात जीवन-चक्र

चक्रवात के जीवन-चक्र की चार अवस्थायें होती हैं— (i) प्रारम्भिक अवस्था, (ii) शैशवावस्था, (iii) प्रौढ़ावस्था (iv) संरोधावस्था।

(i) प्रारम्भिक अवस्था में ध्रुवीय वाताग्र के दोनों ओर पवन धारायें वायुदाब रेखाओं तथा वाताग्र के समानांतर प्रवाहित होती हैं। ध्रुवीय वायुराशि में पूर्वी हवायें तथा उष्णकटिबंधीय वायु राशि में पछुवा हवायें चलती हैं। तरंग जनित विक्षोभ उत्पन्न होने के पूर्व वाताग्र पूरी तरह से संतुलित अवस्था में बना रहता है। शीतल वायु राशि उष्ण वायु राशि के नीचे स्फान के रूप में रहती है। इस अवस्था में वायु विस्थापन का हमेशा अभाव होता है। लेकिन झुके हुए वाताग्र पृष्ठ पर जहां दो विभिन्न वायु राशियां आपस में मिलती हैं, वायु की दिशा में आकस्मिक परिवर्तन पाया जाता है जिसे वायु-कर्तन कहते हैं।

(ii) शैशवावस्था में वायु-कर्तन की वजह से वाताग्र पर तरंग की उत्पत्ति दिखाई गई है। कभी भी इस तरंग का विकास नहीं होता और कुछ दूर वाताग्रों के साथ चल कर इसका अस्तित्व समाप्त हो जाता है।

(iii) प्रौढ़ावस्था में तरंग के शीर्ष विन्दु पर निम्न दाब केंद्र स्थित होता है। पछुवा पवनों की दिशा दक्षिण-पश्चिम से उत्तर-पूर्व की ओर हो जाती है तथा वाताग्र का पूर्वी भाग उत्तर की ओर उष्ण वाताग्र के रूप में विस्थापित हो जाता है। वाताग्र का पश्चिमी भाग शीत वाताग्र के रूप में दक्षिण की ओर बढ़ता है।

(iv) संरोधावस्था में चक्रवात का संरोधन होता है। शीत वाताग्र के आगे बढ़ने की गति उष्ण वाताग्र की अपेक्षा अधिक होती है, जिससे वह आगे बढ़ता हुआ उष्ण वाताग्र को संकुचित बनाता जाता है। अंततः शीत वाताग्र तथा उष्ण वाताग्र आपस में मिल जाते हैं और उष्णार्द्र वायु राशि धरातल से ऊपर उठती चली जाती है। शीत वाताग्र के द्वारा उष्ण वाताग्र के अधिग्रहण को संरोधन की प्रक्रिया कहते हैं। संरोधन की प्रक्रिया के पूरी होने तक सम्पूर्ण चक्रवात निचले भाग में ठण्डी वायु राशि से भर जाता है और अंत में उसका पूरी तरह से विघटन हो जाता है।

चक्रवात के प्रकार

चक्रवात दो प्रकार के होते हैं। शीतोष्ण कटिबंधीय चक्रवात तथा उष्ण कटिबंधीय चक्रवात।

I. शीतोष्ण कटिबंधीय चक्रवातः शीतोष्ण कटिबंधीय क्षेत्रों अर्थात् दोनों गार्द्धों में 30° से 65° अक्षांशों के बीच शीतोष्ण कटिबंधीय चक्रवात या गर्तचक्र न्न होते हैं। यहां पर ध्रुवीय क्षेत्रों से आने वाली शीतल तथा भारी वायु-राशि अयनवर्ती क्षेत्रों में उत्पन्न उष्ण वायुराशियों का मिलन होता है जिनसे ध्रुवीय का निर्माण होता है। दोनों वायुराशियां एक-दूसरे में विलीन न होकर अपनी ता को बनाए रखती हैं। इन्हीं वाताग्रों में शीतोष्ण कटिबंधीय चक्रवातों ने होती है। इन चक्रवातों का आकार वृत्ताकार या गोलाकार होता है हें निम्न गर्त (low depression) या ट्रफ (trough) कहते हैं। जब दीर्घाकार हो जाते हैं, तब इन्हें द्रोणिका भी कहा जाता है। इन्हें V आकृति गर्तचक्र भी कहा जाता है। शीतोष्ण चक्रवात में तापमान रेखाओं के 10 से 20 मिलीबार का अंतर होता है, कभी-कभी 35 मिली बार तक भी अंतर होता है। शीतोष्ण चक्रवातों की लंबाई 160 कि.मी. से 3200 कि.मी. तक पायी जाती है, जबकि इनके विस्तार का क्षेत्रफल 16 लाख वर्ग कि.मी. तक होती है। वायुमंडल में इनकी ऊंचाई 10 या 12 कि.मी. तक होती है। शीतोष्ण कटिबंधीय चक्रवातों की उत्पत्ति मुख्य रूप से ध्रुवीय वाताग्र के साथ होती है। मुख्य रूप से ये उच्च अक्षांशों में ही ज्यादा संख्या में उत्पन्न होते हैं। शीतोष्ण चक्रवातों का कोई निश्चित मार्ग नहीं होता है, अतः इनके मार्ग को ग्रेंजा पथ (storm track) कहते हैं। इन चक्रवातों के अग्रभाग का तापमान पृष्ठ भाग की अपेक्षा अधिक होता है। इनके केंद्रीय निम्न वायुदाब क्षेत्र के उत्तर-पूर्व में उष्ण वाताग्र तथा उत्तर-पश्चिम में शीत वाताग्र उपस्थित रहता है। उष्ण वाताग्र क्षेत्र में तापमान सागरीय क्षेत्रों से गर्म एवं आर्द्र पवनें चलती रहती हैं, अतः ठण्डी एवं भारी हवाओं के मिलन के बाद कपासी वादलों का निर्माण होता है तथा वर्षा एवं हिमपात होने लगता है। इन चक्रवातों का एक निश्चित जीवन काल भी होता है जो कई घंटों से लेकर कई दिनों तक का हो सकता है। उल्लेखनीय है कि दो चक्रवातों के बीच एक प्रतिचक्रवात अवश्य उपस्थित रहता है।

इनके मुख्य रूप से तीन प्रकार हैं :

(i) गतिक चक्रवात (dynamic cyclone): गतिक चक्रवातों को ही मुख्य शीतोष्ण कटिबंधीय चक्रवात माना जाता है। इनकी उत्पत्ति ठंडी ध्रुवीय एवं उष्ण तथा आर्द्र महासागरीय वायु राशियों के वाताग्र के सहारे मिलने के कारण होती है। इन चक्रवातों से सबसे अधिक क्षेत्र प्रभावित होते हैं, साथ ही ये कई प्रकार के वाताग्रों को पूर्ण विकसित करने में मदद करते हैं।

(ii) तापीय चक्रवात (thermal cyclone): इन चक्रवातों की उत्पत्ति के पीछे जल और स्थल पर प्राप्त होने वाली सूर्यातप की मात्रा और इन माध्यमों का स्वभाव है। इसी कारण इन्हें सूर्यातप चक्रवात भी कहा जाता है। वस्तुतः, गर्मी में स्थल पर निम्न दाब क्षेत्र विकसित हो जाता है, अगर उसके चारों ओर महासागर हो तो वहां उच्च दाब रहता है। अतः ऐसे में वाहरी सागरीय क्षेत्र से स्थलीय केंद्र की ओर हवाएं चलने लगती हैं, ठीक यही प्रक्रिया शीतकाल में महासागरों पर होती है। वहां निम्न दाब रहता है जवकि स्थल पर उच्च दाब। फलतः स्थलीय क्षेत्र से सागरीय निम्न दाब केंद्र की तरफ हवाएं चलने लगती हैं।

(iii) उपचक्रवात (secondary cyclone): उपचक्रवात वहुत ही अल्पकालिक तथा कमजोर होता है। इस चक्रवात की उत्पत्ति मुख्य चक्रवात के विघटित हो जाने के पश्चात् तब होती है, जब मुख्य चक्रवात के दक्षिण या दक्षिण-पश्चिम (उत्तरी गोलार्द्ध में) में एक और चक्रवात बन जाए। यह विकास की विभिन्न अवस्थाओं से गुजरता हुआ पूर्ण विकसित चक्रवात बन जाता है। उपचक्रवातों को सहकारी चक्रवात भी कहते हैं। ये हरेक ध्रुवीय वाताग्र के किनारे उसके विघटित हो जाने के पश्चात् दो से लेकर पांच तक की संख्या में बनते हैं। इनकी एक शृंखला होती है, जो एक के बाद एक चलती है।

II. उष्ण कटिबंधीय चक्रवातः उष्ण कटिबंधीय चक्रवातों का जन्म कर्क तथा मकर रेखाओं के बीच होता है। ये शीतोष्ण चक्रवात जैसे समरूप नहीं होते हैं। इनमें गति, आकार तथा मौसम-संबंधी तत्वों में बहुत अंतर होता है। ये निम्न अक्षांशों के मौसम, विशेषकर, वर्षा को बहुत प्रभावित करते हैं। ये 80 से लेकर 300 कि.मी. तक विस्तृत हो सकते हैं, पर कभी-कभी इनका व्यास 50 कि.मी. से भी कम होता है। इनकी गति में भी एकरूपता नहीं होती है।

उष्ण कटिबंधीय चक्रवातों की सबसे मुख्य बात यह है कि ये सागरों के ऊपर बहुत सक्रिय होते हैं, लेकिन स्थल पर पहुंचते-पहुंचते क्षीण हो जाते हैं। अतः ये महाद्वीपों के तटीय भागों पर ही अधिक प्रभावी होते हैं। इनमें तापीय विभिन्नता शीतोष्ण चक्रवातों की तरह नहीं पायी जाती। उष्ण कटिबंधीय चक्रवातों के हर हिस्से में वर्षा होती है तथा ये व्यापारिक पवनों के साथ पूर्व से पश्चिम दिशा में बढ़ते हैं। विषुवत् रेखा से 15° अक्षांश तक इनकी दिशा पश्चिमी तथा 15° से 30° तक ध्रुवों की ओर, उसके बाद फिर से पश्चिमी हो जाती है। उपोष्ण

WWW.GRADESETTER.COM

WWW.GRADESETTER.COM

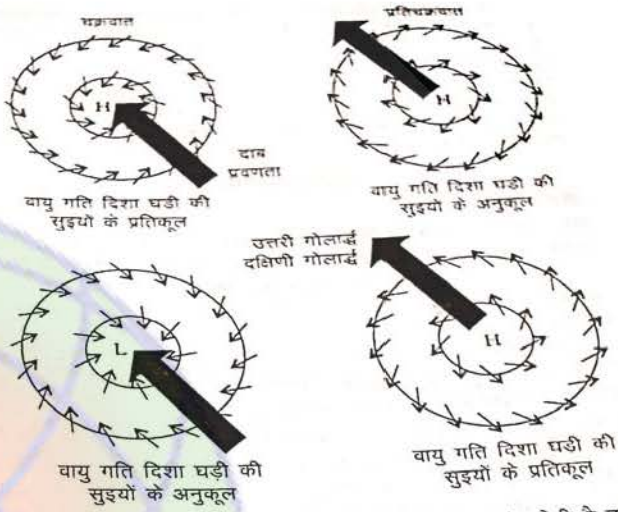

हैं तथा बहुत लंबे, विस्तृत तथा गहरे होते हैं। इनकी गति मंद होती है तथा ये अक्सर स्थिर होते हैं।

(ii) ध्रुवीय-महाद्वीपीय प्रतिचक्रवातः इनकी उत्पत्ति उच्च अक्षांशों में अत्यधिक शीतल वायु राशियों से होती है। लेकिन ये छिछले होते हैं अतः लगभग 2500 मीटर तक ही वायुमंडल में इनका प्रभाव रहता है।

(iii) चक्रवातों के मध्य स्थित चक्रवातः शीतोष्ण कटिबंधीय चक्रवातों की शृंखला में अक्सर दो चक्रवातों के बीच एक प्रतिचक्रवात स्थित रहता है। ये वायु-विभाजक की तरह कार्य करते हैं।

(iv) ध्रुवीय वायु के बहिर्गमन से निर्मित प्रतिचक्रवातः जब शीतोष्ण कटिबंधी चक्रवात इतने प्रबल, विस्तृत और शक्तिशाली होते हैं कि इनके पीछे की तरफ से ध्रुवीय वायुराशि खिंच कर निम्न अक्षांशों की ओर चली आती है, तब ये उन निम्न अक्षांशों पर स्थित महासागरों से ऊष्मा ग्रहण कर लेती है तथा दो-तीन दिन के भीतर उपोष्ण कटिबंधीय प्रतिचक्रवातों में बदल जाती है। इन प्रतिचक्रवातों को 'पोलर आउट ब्रेक हाई' (polar outbreak highs) भी कहते हैं।

इसके अतिरिक्त, सामान्य तौर पर या तापमान के आधार पर प्रतिचक्रवातों को तीन वर्गों में रखा जा सकता है।

(i) शीतल प्रतिचक्रवात (cold anticyclone): शीतल प्रतिचक्रवात दो तरह के होते हैं। *पहले*, वे जो क्षणिक होते हैं और मार्गों में ही विलीन हो जाते हैं। *दूसरे*, वे जो अधिक सक्रिय होते हैं तथा स्थायी होते हैं। इनका मार्ग भी लंबा होता है। शीतल प्रतिचक्रवात तापीय कारणों से उत्पन्न होते हैं। बहुत अधिक ऊंचाई पर कम शीतल प्रतिचक्रवात मिलते हैं, क्योंकि ऊंचाई पर निम्न दाब विकसित होने लगता है। शीतल प्रतिचक्रवात जब उष्ण कटिबंध में प्रवेश करते हैं तथा तब अधिक ताप के कारण समाप्त होने लगते हैं।

(ii) गर्म प्रतिचक्रवातः इनका जन्म उपोष्ण उच्च वायु दाब पेटी में हो है, जहां हवाओं का अपसरण (divergence) होता है। गर्म प्रतिचक्रवातों उत्पत्ति गतिक या यांत्रिक होती है। इनका आकार विशाल होता है, पर ये सक्रिय होते हैं। इनकी गति अत्यधिक मंद होती है, फलतः एक ही स्था कई दिनों तक टिके रहते हैं। गर्म प्रति-चक्रवातों के आगमन के बाद मौसम हो जाता है, आकाश बादल रहित दिखते हैं।

WWW.GRADESETTER.COM

WWW.GRADESETTER.COM

(iii) अवरोधी प्रतिचक्रवात (blocking anticyclone): इस प्रतिचक्रवात को नवीन कल्प जा सकता है, जिसका पता हाल ही में चला है। इनका निर्माण वायुमंडल के परिवर्तन मंडल (troposphere) के ऊपरी भाग में वायु संवार में बाधा या रुकावट के कारण होता है। इनका आकार छोटा होता है। गति मंद होती है, परंतु वायु प्रणाली, वायु दाब तथा मौसम-संबंधी विशिष्टताओं के मामले में ये गर्म प्रतिचक्रवातों—जैसे होते हैं। इनकी उत्पत्ति मुख्य रूप से 0° से 30° पश्चिमी देशांतर रेखाओं तथा 140°-170° पश्चिमी देशांतर रेखाओं के मध्य स्थित वायुमंडल में होती है।

खराब मौसम

तड़ित झंझा

तड़ित झंझा, वह तूफान है जिसके साथ आकाश में बिजली चमकती है, बादल गरजते हैं, भारी वर्षा होती है तथा कभी-कभी ओले पड़ते हैं। यह उस समय आता है, जब भूमि बहुत गर्म हो जाती है और वायु संवहनीय रूप से ऊपर उठती है और अस्थिरता की चरम दशाएं उत्पन्न हो जाती हैं तथा आसमान पर कपासी वर्षा मेघ छा जाते हैं।

तड़ित झंझा का संबंध उच्च तापक्रम, उच्च आर्द्रता तथा अभिसरण से अधिक होने से भूमध्य-रेखीय प्रदेश इनके लिए सर्वाधिक आदर्श स्थान होते हैं, जहां पर स्थानीय या तापीय झंझावत अक्सर आते रहते हैं। इन प्रदेशों में प्रत्येक वर्ष 75 से 100 दिन झंझावत के दिन हो जाते हैं। कहीं-कहीं पर तो 200 दिन भी हो जाते हैं। भूमध्य रेखा से ध्रुवों की ओर इनके दिन कम होते जाते हैं। उपोष्ण कटिबंधीय उच्चदाब के पास इनकी संभावना काफी कम हो जाती है। उच्च अक्षांशों में (45°-60°) शीतोष्ण कटिबंधीय चक्रवातों के साथ इनका निर्माण होता है, लेकिन 60°-70° अक्षांशों के आगे तड़ित झंझा सक्रिय नहीं होते। भारत में चेरापूंजी में दक्षिण-पश्चिम मानसून की उष्णार्द्र हवाएं पर्वतीय ढाल से टकराकर झंझावतीय वर्षा द्वारा 1200 सेमी. से अधिक वर्षा प्रदान करती है।

तड़ित झंझा की रचना कई संवहनीय कोशिकाओं से होती हैं, जिनमें नीचे से ऊपर हवाएं चलती हैं। शुरुआत में प्रत्येक कोशिका का एक जीवन चक्र होता है। वह इस प्रकार है—(i) प्रारम्भिक अवस्था (ii) प्रौढ़ावस्था (iii) विलीन अवस्था।

प्रारम्भिक अवस्था को कपासी अवस्था कहते हैं, इसमें गर्म वायु का ऊपर की ओर तीव्र प्रवाह होता है। हवाएं किनारे से खिंचकर ऊपर की ओर उठती हैं तथा बादलों का धीरे-धीरे विकास होता रहता है।

प्रौढ़ावस्था वह होती है जिसमें हवा का ऊपर तथा नीचे दोनों ओर प्रवाह होता है। ऊपर उठने के कारण वायु ठंडी होकर वर्षा करती है। इस वर्षा में नीचे से ऊपर उठती हवा से घर्षण होता है, जिस कारण वायु का कुछ भाग नीचे प्रवाहित होने लगता है। यह वायु ठंडी होती है।

तीसरी अवस्था *विलीन अवस्था* होती है, जबकि ऊपर से उतरती ठंडी वायु धरातल पर फैल जाती है तथा वायु का ऊपर उठना समाप्त हो जाता है। ऊपर भाग में बादल छतरी के आकार में फैल जाते हैं तथा उच्च स्तरीय बादल एवं पक्षाभ स्तरीय बादल के रूप में बदल जाते हैं।

बिजली का चमकना

बड़ी-बड़ी जल की बूंदों के टूटने के कारण तड़ित उत्पन्न होती है। प्रत्येक बूंद में धनात्मक तथा ऋणात्मक बिजली होती है तथा बराबर मात्रा में होने पर ये तटस्थ अवस्था में होती हैं। बूंदों के टूटने पर कहीं पर धन आवेश तथा कहीं ऋणात्मक आवेश अधिक हो जाते हैं। जब तड़ित झंझा प्रौढ़ावस्था में होता है तो बादलों के आधार में ऋणात्मक बिजली तथा ऊपरी भाग में धनात्मक बिजली के आवेश होते हैं। इस अंतर के कारण रेखाएं चमक उठती हैं जिन्हें 'बिजली का चमकना' कहते हैं।

रिकेन या टाइफून

उष्ण कटिबंधीय चक्रवात को संयुक्त राज्य अमेरिका में हरिकेन तथा चीन टाइफून कहा जाता है। ये काफी विस्तृत तथा कई घिरी समदाब रेखाओं से होते हैं। इनका विकास अयन रेखाओं के बीच कुछ खास भागों में ही होता है तथा देखने में ये शीतोष्ण चक्रवात से लगते हैं, पर वास्तव में ऐसा नहीं होते हैं। हरिकेन में हवाओं की गति 120 कि.मी. प्रति घंटे होती है। ये विस्तृत तथा प्रचण्ड होते हैं, पर इनकी संख्या बहुत कम होती है। ये केंद्र में 6 से 48 कि.मी. का एक ऐसा क्षेत्र होता है, जहां हवाएं एकदम शांत रहती हैं तथा वहां वर्षा नहीं होती है, इसे 'हरिकेन का चक्षु (eye of the storm)' कहते हैं। हरिकेन से सागरों में जो तरंगें उठती हैं, उन्हें 'हरिकेन तरंग' कहते हैं। ये 3 से 6 मीटर ऊंची होती हैं। हरिकेन में भीषण वर्षा होती है तथा इसमें वायु-दिशा में परिवर्तन नहीं होता है।

टॉरनेडो

यह सबसे छोटा उष्ण कटिबंधीय चक्रवात है, लेकिन सबसे ज्यादा प्रचण्ड है। इससे काफी बड़े स्तर पर तबाही मचती है। टॉरनेडो का उद्भव क्षेत्र मुख्यतः अमेरिका है लेकिन, आस्ट्रेलिया में भी ये गौण रूप से उत्पन्न होते हैं। टॉरनेडो की आकृति कीपाकार होती है, अर्थात् ये धरातल पर संकरे तथा ऊपर चौड़े में विस्तृत होते चले जाते हैं। यह विस्तृत भाग वर्षा-कपासी बादलों से संबद्ध रहता है, जो काले रंग का होता है। इसके साथ भारी मात्रा में धूल, रेत तथा कण इत्यादि मिले होते हैं, जो इसका रंग काला कर देते हैं। टॉरनेडो की सबसे बड़ी विशिष्टता है, इनमें हवाओं की गति जो 800 कि.मी. प्रति घंटे होती है। इनकी गति अन्य किसी चक्रवात में नहीं पायी जाती तथा ये चक्रवातों की तरह महाद्वीपों और महासागरों पर उत्पन्न न होकर सिर्फ महाद्वीपों या धरातल पर ही उत्पन्न होते हैं। वस्तुतः टॉरनेडो के मध्य या केंद्र में निम्न दाब क्षेत्र होता है, पर केंद्र और परिधि के वायुदाब में बहुत ज्यादा अंतर होता है, फलतः हवाएं अत्यधिक तीव्र गति से केंद्र की तरह भागती हैं।

टॉरनेडो के कारण आकाश एकदम काला हो जाता है। वायुदाब निम्नतम स्तर पर पहुंच जाता है तथा भयंकर वेग से हवाएं चलने लगती हैं, जिससे मकानों की छतें आकाश में उड़ जाती हैं उनमें दरार पड़ जाती है तथा भयंकर विनाशलीला शुरू हो जाती है। दूसरी तरफ, अगर टॉरनेडो का कीपाकार हिस्सा ऊपर उठा हुआ रहता है तब धरातल पर उतनी तबाही नहीं मचती है। इनकी उत्पत्ति विशेषकर वसंत और ग्रीष्म ऋतु में होती है। वैसे, ये कभी भी उत्पन्न हो सकते हैं।

जलवायु

एक वृहद क्षेत्र में औसत मौसम दशाओं और इन दशाओं में परिवर्तन (स्थान व काल में) उस स्थान की जलवायु कहलाती है। मौसम सूचना एक विशिष्ट घटना से संबद्ध होती है जबकि जलवायु मौसम के सामान्यीकरण को व्यक्त करती है। जलवायु अवस्थाओं को जानने के लिए एक विशिष्ट समयांतराल को ध्यान में रखा जाता है। यह समयांतराल सामान्यतः कम से कम 30 वर्ष का लिया जाता है। मौसम के मुख्य तत्व तापमान, वायुमण्डलीय दाब, पवन और आर्द्रता इत्यादि हैं।

जलवायु वर्गीकरण के उपागम

जलवायु के निम्नांकित तीन प्रमुख उपागम हैं जिनका अब तक अनुसरण किया गया है—(i) आनुभविक (ii) जननिक (iii) व्यावाहारिक।

आनुभविक वर्गीकरण: इस उपागम के अंतर्गत जलवायु के विविध प्रकारों और उनकी सीमाओं का निर्धारण स्वयं जलवायु के विभिन्न तत्वों के उपलब्ध आंकड़ों अथवा प्राकृतिक वनस्पतियों पर जलवायु के प्रभाव के आधार पर किया जाता है। कोपेन और थार्नथ्वेट का वर्गीकरण इसके विशिष्ट उदाहरण हैं। इस वर्गीकरण में तापमान एवं वर्षण जैसे जलवायु के दो प्रमुख तत्वों को प्रधानता मिली है। आनुभविक वर्गीकरण में किसी प्रदेश की जलवायु की उत्पत्ति के कारकों जैसे वायुराशि, पवन प्रवाह प्रणाली आदि पर विचार नहीं किया जाता है।

जननिक वर्गीकरण: यह वर्गीकरण विभिन्न प्रकार की जलवायु की उत्पत्ति के कारणों के आधार पर किया जाता है। इसके अतिरिक्त, इस प्रकार का वर्गीकरण भूगोलविदों, शस्य वैज्ञानिकों तथा अन्य लोगों की आवश्यकताओं की पूर्ति करने में पूरी तरह से कभी सहायक नहीं हो सकता।

व्यावहारिक वर्गीकरण: इस वर्गीकरण का मुख्य आधार जलवायु का अन्य वस्तुओं पर पड़ने वाला प्रभाव है। इसके द्वारा उन विशिष्ट समस्याओं के समाधान

WWW.GRADESETTER.COM

WWW.GRADESETTER.COM

सुनिश्चित तापमान व वर्षा की मात्रा के आधार पर परिभाषित करता है। तापमान व वर्षण की गणना व्यक्तिगत माह के वार्षिक औसत के आधार पर की गई है।

1. निम्न अक्षांशीय जलवायु: इस समूह में निम्न उप-समूह हैं:

(i) उष्णकटिबंधीय वर्षा वन: औसत तापमान : लगभग 27 °C वार्षिक वर्षा : लगभग 200 सेमी.। इस जलवायु की विशेषता उच्च वार्षिक तापमान और भारी वर्षा है। ऐसी जलवायु 0°-25° उत्तरी-दक्षिणी अक्षांश पट्टियों के मध्य पायी जाती है। इस जलवायु के अंतर्गत आने वाले क्षेत्र अमेजन बेसिन, कांगो बेसिन, मेडागास्कर, मलेशिया, फिलीपींस और इण्डोनेशिया हैं। उच्च तापमान का कारण उच्च आर्द्रता और न्यून वायु गतिशीलता है।

(ii) मानसून: इन क्षेत्रों में औसत वार्षिक तापमान लगभग 27.5 °C (तापमान का वार्षिक परिसर 3.6 °C) है। ग्रीष्मकालीन वर्षा से पूर्व मई माह में उच्चतम तापमान रहता है और वार्षिक वर्षा 300 से.मी. होती है। इस प्रकार का मौसम अफ्रीका के पश्चिमी गुयाना तट, दक्षिण-पूर्वी एशिया, अमेज़न घाटी, वेस्टइण्डीज तथा उत्तरी अमेरिका के गुयाना तटीय भूमि में पाया जाता है। इन क्षेत्रों की मुख्य विशेषता मानसूनी हवाएं हैं जिनका पूर्णतः पलटाव ग्रीष्मकाल में होता है। इस प्रकार की जलवायु को मानसूनी वर्षा वन जलवायु के नाम से भी जाना जाता है।

(iii) उष्णकटिबंधीय सवाना या सूडान: इन क्षेत्रों में औसत वार्षिक तापमान 27 °C रहता है और वार्षिक वर्षा: लगभग 150 सेमी. होती है। ऐसी जलवायु कोलम्बिया, थाईलैण्ड, उत्तरी आस्ट्रेलिया, वियतनाम और वेनेजुएला में पायी जाती है। ये क्षेत्र भूमध्य रेखा की ओर से उष्ण कटिबंधीय वर्षावन से और ध्रुवों की ओर से शुष्क जलवायु से घिरे है। सवाना प्रकार की विशेषताएं उष्णकटिबंधीय और उपोष्ण अक्षांशों में पाये जाने वाले घास के मैदानों में पाई जाती हैं।

(iv) उष्णकटिबंधीय मरुस्थलीय: उष्णकटिबंधीय मरुस्थल पर्यावरण की पराकाष्ठा है: ये धरातल पर शुष्क और गर्म स्थान के रूप में हैं। विश्व के अधिकांश गर्म मरुस्थल 15° से 35° उत्तर तथा दक्षिण अक्षांशों के मध्य स्थित हैं। विश्व के सभी गर्म मरुस्थलों के मध्य से कर्क अथवा मकर रेखा गुजरती है। इस क्षेत्र के अंतर्गत विशाल मरुस्थल उत्तरी अफ्रीका (सहारा), सऊदी अरब से ईरान तक, पाकिस्तान और पश्चिमी भारत तथा उष्ण कटिबंधीय मरुस्थल कैलीफोर्निया और उत्तरी मैक्सिको में पाये जाते हैं। इन क्षेत्रों में औसत वार्षिक तापमान 18°C और वार्षिक वर्षा 20 सेमी. होती है।

(v) उष्णकटिबंधीय स्टेपी: औसत तापमान लगभग 20°C, वार्षिक वर्षा 30 सेमी.। स्टेपी जलवायु उष्ण मरुस्थलों तथा आर्द्र जलवायु प्रदेशों के बीच की संक्रमण पेटी में पायी जाती है। यहां वर्षा अनियमित तथा थोड़ी मात्रा में होती है। वर्षाकाल छोटा होने के कारण यह जलवायु अर्द्ध शुष्क होती है। यह जलवायु आस्ट्रेलिया के बड़े मरुस्थल, उत्तरी अफ्रीका के सहारा और दक्षिण-पश्चिम एशिया में पायी जाती है।

2. मध्य अक्षांशीय और उपोष्ण कटिबंधीय जलवायु: इस समूह के अंतर्गत निम्नलिखित उप-समूह हैं—

(i) मध्य अक्षांशीय मरुस्थल: इन क्षेत्रों में औसत वार्षिक तापमान 38 °C रहता है और ग्रीष्मकाल में यह औसतन 40 °C रहता है इन क्षेत्रों में शीतकालीन तापमान में गिराव आती है और यह औसतन 15 °C रहता वार्षिक वर्षा औसतन 25-40 सेमी के लग होती है। मध्य अक्षांशीय मरुस्थल आंत एशिया के साथ गोबी मरुस्थल, उत्तर-पश्चिम चीन, कजाकस्तान उज्बेकिस्तान में पाये जाते हैं। इस उप

कोपेन के अनुसार जलवायु प्रकार

	प्रकार	कूट अक्षर	कूट अक्षर
	उष्णकटिबंधीय आर्द्र	Af	कोई शुष्क ऋतु नहीं।
	उष्णकटिबंधीय मानसून	Am	मानसून, लघु शुष्क ऋतु
	उष्णकटिबंधीय आर्द्र एंव शुष्क	Aw	जाड़े की शुष्क ऋतु
	उपोष्ण कटिबंधीय स्टैपी	BSh	निम्न अक्षांशीय अर्द्ध शुष्क एवं शुष्क
	उपोष्ण कटिबंधीय मरूस्थल	BWh	निम्न अक्षांशीय शुष्क
	मध्य अक्षांशीय स्टैपी	BSk	मध्य अक्षांशीय अर्द्ध शुष्क अथवा शुष्क
	मध्य अक्षांशीय मरूस्थल	BWk	मध्य अक्षांशीय शुष्क
	आर्द्र उपोष्ण कटिबंधीय	Cfa	मध्य अक्षांशीय अर्द्धशुष्क अथवा शुष्क
	भूमध्य सागरीय	Csa	शुष्क गर्म ग्रीष्म
	समुद्री पश्चिम तटीय	Cfb	कोई शुष्क ऋतु नहीं, कोष्ण तथा शीतल ग्रीष्म
	आर्द्र महाद्वीपीय	Df	कोई शुष्क ऋतु नहीं, भीषण जाड़ा
	उप-उत्तर ध्रुवीय	Dw	जाड़ा शुष्क तथा अत्यंत भीषण
	टुंड्रा	ET	सही अर्थो में कोई ग्रीष्म नहीं
	ध्रुवीय हिमटोपी	EF	सदैव हिमाच्छादित हिम
	उच्च भूमि	H	हिमाच्छादित उच्च भूमियाँ

WWW.GRADESETTER.COM

WWW.GRADESETTER.COM

के प्रमुख जलवायु क्षेत्र अरेबिया, दक्षिण-पश्चिमी-संयुक्त राज्य अमेरिका, मध्य आस्ट्रेलिया, दार, सहारा और दक्षिण-पश्चिमी अफ्रीका आते हैं। इस उप-समूह के क्षेत्र पूर्व, पश्चिम और उत्तर की ओर से उपोष्णकटिबंधीय पवनों द्वारा घिरे होते हैं। इन क्षेत्रों में वर्षा कम होती है तथा इसका स्वरूप अनियमित होता है और जब कभी होती है तब इसका स्वरूप तड़ित के साथ मूसलाधार होता है। इन क्षेत्रों में कभी-कभी ही एक अन्य विशेषता आसमान का साफ रहना और धूप की अधिकता भी है। *(ii) मध्य अक्षांशीय स्टेपी:* इन क्षेत्रों में ग्रीष्मकाल में औसत तापमान 21°C होता है और वार्षिक वर्षा कम होती है। स्टेपी जलवायु का प्रसार उत्तरी-पश्चिमी अन्य क्षेत्र अर्जेन्टिना, दक्षिण आस्ट्रेलिया, दक्षिणी अफ्रीका, उत्तरी-पश्चिमी मैक्सिको और उत्तरी-पश्चिमी भारत में। स्टेपी जलवायु का प्रसार उत्तर-पश्चिमी और कटकमान व्यापक क्षेत्र है। इस उप-समूह के क्षेत्र विश्व अक्षांशीय महत्त्वहीन जलवायु क्षेत्रों का घेरे रखते हैं। यूरोपोन्मुख स्टेप क्षेत्र में ऐसा ग्रीष्मकाल में होता है। शीतकाल वर्षा होती है तथाकि भूमध्यसागरोन्मुख क्षेत्र में ऐसा ग्रीष्मकाल में होता है। शीतकाल के समय इन क्षेत्रों में चक्रवात आते हैं।

(iii) उपोष्ण कटिबंधीय शुष्क-ग्रीष्म अथवा भूमध्यसागरीय: इन क्षेत्रों में ग्रीष्मकाल में औसत तापमान 25 °C, शीतकाल में औसत तापमान 10 °C और औसत वार्षिक तापमान 16 °C रहता है। इस उपसमूह के क्षेत्रों में 40-60 से.मी. औसत वार्षिक वर्षा होती है। इसके अंतर्गत आने वाले क्षेत्रों में आस्ट्रेलिया के दक्षिण-पश्चिम और दक्षिण-पूर्वी छोर, मध्य कैलीफोर्निया, मध्य चिली, भूमध्य-सागर समुद्र तथा दक्षिण अफ्रीका का दक्षिणी छोर शामिल हैं। ये क्षेत्र कोष्ण शीतोष्ण अक्षांशों में पाये जाते हैं। इन क्षेत्रों में ग्रीष्म ऋतु शुष्क, और शीत काल में मध्य अक्षांशीय चक्रवात और अग्र के कारण, वर्षा होती है। ग्रीष्मकालीन सूखे का कारण उपोष्णीय प्रतिचक्रवातों की उपस्थिति है।

(iv) उपोष्ण कटिबंधीय आर्द्र जलवायु अथवा चायना प्रकार: इस उप-समूह के क्षेत्रों में औसत वार्षिक तापमान 19 °C रहता है और औसत वार्षिक वर्षा 120 से.मी.। इस उपसमूह में आने वाले क्षेत्रों में अर्जेंटीना, आस्ट्रेलिया की पूर्वी समुद्र तटीय पट्टी, दक्षिणी ब्राजील, चीन, जापान, दक्षिण-पूर्वी संयुक्त राज्य अमेरिका, पूर्वी एशिया से उत्तरी भारत, दक्षिण अफ्रीका का दक्षिण-पूर्वी क्षेत्र और उरुग्वे हैं। ये क्षेत्र भूमध्य सागरीय प्रकार की जलवायु के पूर्वी प्रतिरूप हैं। इन क्षेत्रों में साल भर वर्षा होती है और ग्रीष्म और शीतकाल के अंतिम समयों में हरीकेन और टाइफून आते हैं।

(v) पश्चिमी तटीय समुद्री: ये प्रदेश महाद्वीपों के पश्चिमी भागों में 45° से 65° अक्षांशों के मध्य स्थित हैं। परंतु उत्तरी अमेरिका और दक्षिण अमेरिका में रॉकीज और एण्डीज पर्वतमालाओं के कारण इसका प्रभाव संकीर्ण तटीय भागों तक ही सीमित है। यह जलवायु मुख्यतः पश्चिमी यूरोप में पायी जाती है (ब्रिटेन, उत्तरी-पश्चिमी फ्रांस, जर्मनी, डेनमार्क, हॉलैण्ड, बेल्जियम, नार्वे देशों में)। उत्तरी अमेरिका में इसका विस्तार ब्रिटिश कोलम्बिया तथा अलास्का के दक्षिण-पश्चिमी तटीय भागों में मिलता है। दक्षिण चिली, तंस्मानिया और न्यूजीलैण्ड में भी इस प्रकार की जलवायु मिलती है। इस क्षेत्र के अंतर्गत औसत तापमान 10°C रहता है और वार्षिक औसत वर्षा 254 सेमी. होती है।

(vi) आर्द्र महाद्वीपीय जलवायु: समुद्र से दूर स्थित भागों की जलवायु महाद्वीपीय होती है जहां ग्रीष्मकाल में काफी गरमी और शीतकाल में अधिक सर्दी पड़ती है। यहां समुद्री पवनों के मार्ग से दूर होने के कारण आकाश साफ रहता है तथा वायु में सापेक्षिक आर्द्रता भी कम रहती है।

(अ) गरम ग्रीष्म ऋतु वाली जलवायु: यह जलवायु आर्द्र महाद्वीपीय का णी भाग है। दक्षिण की ओर स्थित होने से यहां ग्रीष्म ऋतु गरम रहती है। ी अक्षांशीय स्थिति के कारण यह जलवायु बहुत कम कठोर होती है और आर्द्र जलवायु वाले भागों में यह सबसे अधिक उत्पादित होती है। इस यु के अंतर्गत संयुक्त राज्य अमेरिका की मकई की पेटी, यूरोप में डेन्यूब बाल्कन राज्य और इटली में पो घाटी, एशिया में उत्तरी चीन, मध्य और ंचूरिया, कोरिया तथा जापान का मुख्य द्वीप शामिल है। यहां ग्रीष्म ऋतु ी और गरम होती है। अमेरिका की मकई की पेटी में जुलाई का औसत तापमान 75 °F और 77 °F के आस-पास रहता है। ग्रीष्मकाल में कभी-कभी तापमान 100 °F तक पहुंच जाता है परन्तु रात आर्द्र भी होती है।

(ब) शीतल ग्रीष्म ऋतु वाली जलवायु: इस जलवायु को कभी-कभी शीतल मेंहू की पेटी की जलवायु भी कहते हैं। इस जलवायु का विस्तार कालीन मेंहू की पेटी की जलवायु भी कहते हैं। इस जलवायु का विस्तार अमेरिका में 100° पूर्वी देशांतर के पूर्व की ओर, संयुक्त राज्य अमेरिका के राज्यों एवं कनाडा के दक्षिणी राज्यों में मिलता है। यूरेशिया में इसके अंतर्गत से 60° अक्षांशों के मध्य पूर्वी जर्मनी, पोलैण्ड व रूस के मध्यवर्ती मैदान का भाग आता है। उत्तरी-पूर्वी एशिया में उत्तरी मंचूरिया, दक्षिण-पूर्वी साइबेरिया, जापान का होकैडो द्वीप शामिल हैं। यह प्रदेश अधिक ऊंचे अक्षांशों में स्थित के कारण बहुत ठण्डे होते हैं। शीत ऋतु यहां की प्रमुख ऋतु है।

3. उच्च अक्षांशीय जलवायु: इस समूह में उच्च उप-समूह हैं-

(i) टैगा जलवायु: इस समूह के क्षेत्रों में ग्रीष्मकाल में औसत तापमान 13 C°, शीतकाल में औसत तापमान 3 °C और औसत वार्षिक तापमान रहता है। वर्ष में औसत वर्षा अधिकतम 50 से.मी. होती है। उत्तरी अमेरिका में अलास्का से न्यूफाउण्डलैण्ड तक और यूरेशिया में नार्वे से कामकाटका प्रायद्वीप तक के क्षेत्र इस समूह के अंतर्गत आते हैं। इसका नामकरण साइबेरिया के शंकुधरी वृक्षों के नाम पर किया गया है। ध्रुवीय और आर्कटिक वायु राशियों की इन क्षेत्रों में प्रधानता के कारण यहां का तापमान वर्ष के 6-8 माह तक 0° से कम रहता है। तटीय क्षेत्रों में चक्रवाती वर्षा होती है और आंतरिक भागों में संवहनी वर्षा।

(ii) टुण्ड्रा जलवायु: टुण्ड्रा जलवायु मुख्य रूप से उत्तरी गोलार्द्ध में पाई जाती है। इस समूह के क्षेत्रों में ग्रीष्मकाल में औसत तापमान 10°C और शीतकाल में औसत तापमान शून्य से कम रहता है। इन क्षेत्रों में औसत वार्षिक वर्षा 25 से.मी. होती है। इन क्षेत्रों में ग्रीष्मकाल में वर्षा और शीतकाल में बर्फ गिरती है। ये क्षेत्र 60° उत्तरी अक्षांश के उत्तर में, यूरेशिया और उत्तरी अमेरिका में कनाडा के कुछ द्वीपों में अवस्थित हैं। टुंड्रा प्रदेशों में सामान्यतः महाद्वीपीय जलवायु पाई जाती है। इन प्रदेशों में शीतऋतु अत्यंत ठण्डी होती है और ये प्रदेश लगभग 8 माह तक बर्फ से ढके रहते हैं। बूरान और पूर्गा हवाएं हिम कणों की वर्षा करती हैं।

(iii) हिम आवरण जलवायु: इस समूह क्षेत्र में वार्षिक औसत तापमान 0°C से अधिक नहीं होता है। यह जलवायु क्षेत्र विश्व का सबसे ठण्डा क्षेत्र है। ग्रीनलैण्ड तथा अण्टार्कटिका में हिम आवरण की समुद्र तल से औसत ऊंचाई 3000 मीटर से अधिक है। यह जलवायु उत्तरी गोलार्द्ध में आर्कटिक महासागर के स्थायी रूप से जमे हुये भागों, आइसलैण्ड, कनाडा और रूस के कुछ भागों में अवस्थित है। इस क्षेत्र में वर्षा का वार्षिक औसत 10 सेमी. से अधिक नहीं होता है।

शहरी जलवायु

शहरीकरण वायुमण्डल के सभी तत्वों पर महत्वपूर्ण प्रभाव डालता है। प्राकृतिक वनस्पति का कृत्रिम वनस्पति के साथ प्रतिस्थापन स्थानीय पर्यावरण के जलसंतुलन एवं ऊष्मा संतुलन को बदल देता है। शहरी गगनचुंबी इमारतें पवन वेग को प्रभावित करती हैं तथा धूलकण की मात्रा में वृद्धि करती हैं जिससे शहरी क्षेत्रों में निम्न वायु से वर्षण में वृद्धि होती है।

शहरी क्षेत्रों में मानव गतिविधियों के केंद्रीकरण द्वारा ठंडे ग्रामीण इलाके घिरे गर्म क्षेत्र का निर्माण होता है जिसे **शहरी गर्म द्वीप** कहा जाता है। परिवहन, निर्वातक ऊष्मा तथा एयरकंडीशन द्वारा शहर के वातावरण में इजाफा होता है। सौर विकिरण को परावर्तित करने की कम क्षमता वाली वनस्पति अधिक मात्रा में सूर्यातप का अवशोषण करती है, और प्राकृतिक जैसे, घास की तुलना में धरातल को अधिक गर्म करती है। अतिरि शहर और देश के अन्य जगहों के बीच वायु तापक्रम का 10° सेल्सियस का अंतर पैदा कर सकती है। परिणामस्वरूप, शहर में हिम क विलुप्तीकरण हो जाएगा और वानस्पतिक नवयौवन भी समय से प होगा। परावर्तित धरातल द्वारा सूर्य की रोशनी 'शहरी गगनचुंबी इ

WWW.GRADESETTER.COM

WWW.GRADESETTER.COM

निर्माण में काम आने वाले पदार्थ जैसे ईंट और एसफाल्ट में उच्च ...ोषित होती है। पूरे दिन प्राप्त की गई ऊष्मा को ऊष्मा ह्रास द्वारा ...ल जा सकता है।

...के सम धरातल संचलन को प्रवृत्त करते हैं। जिससे शहर की वायु ...र उठती है, जिसे फिर आस-पास की ठंडी वायु द्वारा प्रतिस्थापित ...ह ग्रामीण-शहर संचरण बेहद संभावित तब होता है जब ...वन हल्की होती है। तीव्र या बढ़ता वायु वेग धूल एवं अन्य धूलकणों का ऊपर की ओर परिवहन करता है, और धूलिचूर्ण के गुम्बद की तरह इकट्ठा हो जाता है। यदि नियत-कालिक पवन वेहद प्रचंड है, तो प्रदूषक शहर की सीमा में फैल जाते हैं और प्रदूषक पिच्छक या पंख की तरह निचली सतह पर बहने वाली हवा के साथ सब जगह फैल जाते हैं। शहर के वातावरण में जमा धूलिकण जल संघनन के केन्द्रक के तौर पर कार्य करते हैं। विभिन्न अध्ययनों में पाया गया है कि शहरी स्रोतों से बढ़े धूलिकण के कारण शहरी क्षेत्र में किस प्रकार निचली हवा के वर्षण में वृद्धि हुई है।

8. जलमण्डल

...र्थ पृथ्वी पर उपस्थित समस्त जलराशि से है। इसके अंतर्गत न ...ठोस व द्रव दोनों) ही आता है बल्कि पृथ्वी की सतह के ...जलीय जल भी शामिल है। पृथ्वी की सतह के 71 प्रतिशत भाग पर ...ैला है। कुल जल का 97 प्रतिशत समुद्रों में, 2.4 प्रतिशत ग्लेशियर ...र बर्फ की टोपी, और 0.6 प्रतिशत अन्य सतही जल स्रोत जैसे नदी, ...तालाब हैं। मात्र 0.001 प्रतिशत जल जलवाष्प (ठोस व द्रव) के रूप ...है। मानव के लिए जलमण्डल का अत्याधिक महत्व है। पृथ्वी के निचले ...एवं समुद्र के मध्य निरंतर ऊर्जा व पदार्थ का आदान-प्रदान होता रहता ...मानव के लिए अत्यंत लाभदायक है। मानव समुद्र का प्रयोग भोजन के ...परिवहन के माध्यम के रूप में करता है।

पृथ्वी पर जल का वितरण

- 97.2 प्रतिशत महासागरों में है।
- 2.15 प्रतिशत ग्लेशियरों, बर्फ की टोपियों और बर्फ की चादरों में है।
- 0.62 प्रतिशत भूजल है।
- 0.009 प्रतिशत झीलों, अंतर्देशीय समुद्रों और नदियों में ताजा जल है।
- 0.001 प्रतिशत किसी दिए गए समय पर वायुमण्डलीय जल वाष्प है।

...भूत और ताजा जल मानव के लिए जल स्रोतों के रूप में उपयोगी या ...रित रूप से उपयोगी है। तरल जल, जल निकायों जैसे महासागर, समुद्र, ...नदी, नहर, तालाब में पाया जाता है। पृथ्वी पर पाये जाने वाला जल मुख्य ...ा खारा है। जल वातावरण में ठोस, द्रव और वाष्प अवस्था में भी उपस्थित ...भू-जल के रूप में भी पाया जाता है।

जल-चक्र

...की एक मुख्य विशेषता है कि यह अपनी अवस्था आसानी से बदल सकता ...ग्रह पर अपनी तीन अवस्थाओं, ठोस, द्रव तथा गैस के रूप में आसानी ...हो जाता है। पृथ्वी पर जल की मात्रा सीमित है। जल का चक्र अपनी ...लते हुए चलता रहता है जिसे हम जल चक्र अथवा जलविज्ञानीय चक्र ...लीय चक्र की प्रक्रिया जल-मण्डल, एक ऐसा क्षेत्र है जहां वातावरण ...की सतह का सारा जल मौजूद होता है। इस जलमण्डल में जल की ...चक्र कहलाता है। जिसे 6 भागों में विभाजित किया गया है—(i) ...ष्पोत्सर्जन, (ii) द्रवण, (iii) वर्षण, (iv) अंतः-स्यंदन, (v) अपवाह ...ण।

...रण में जल वाष्प द्रवित होकर बादलों का निर्माण करते हैं तो ...वण कहते हैं। जब वायु काफी ठण्डी होती है तब जलवाष्प वायु ...होकर बादलों का निर्माण करता है। जब बादल बनते हैं तब ...ओर जल वाष्प को ले जाकर फैलाती है। अंततः बादल आर्द्रता ...तथा वे हिम, वर्षा, ओले आदि के रूप में गिरते हैं।

...ण-अंतः स्यंदन, अपवाह तथा वाष्पीकरण एक साथ होते हैं। ...या वर्षा के भूमि में रिसाव के कारण होती है। यदि वर्षा ...ससे भूमि पर अंतः-स्यंदन की प्रक्रिया होकर अपवाह हो ...स्तर पर होता है तथा नहरों, नदियों में प्रवाहित होते हुए

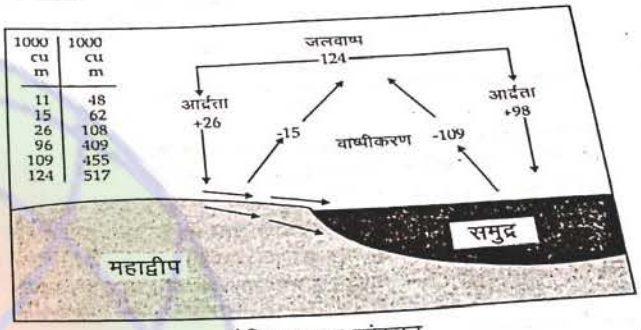

वैश्विक जल संतुलन

बड़े जल निकायों जैसे झीलें अथवा समुद्र में चला जाता है। अंतस्यांदित भू-जल भी इसी प्रकार प्रवाहित होता है क्योंकि यह नदियों का पुनर्भरण करता है तथा जल के बड़े निकायों की ओर प्रवाहित हो जाता है। सूर्य की गर्मी से जल के वाष्प में बदलने की प्रक्रिया को वाष्पीकरण कहते हैं। सूर्य की रोशनी समुद्र तथा झीलों के जल को गर्म करती है तथा गैस में परिवर्तित करती है। गर्म वायु वातावरण में ऊपर उठकर द्रवण की प्रक्रिया से वाष्प बन जाती है।

इस प्रकार जलीय चक्र निरंतर चलता रहता है तथा स्रोतों को स्वच्छ रखता है।

जलीय चक्र एवं वैश्विक जल संतुलन

महासागर, वायुमंडल व स्थल में परस्पर होने वाले जल के सतत आदान-प्रदान को जलीय चक्र कहते हैं। सूर्य के आपतन से महासागर, झील व नदियों से जल

विश्व में जल वितरण के अनुमान

	पृष्ठीय क्षेत्रफल वर्ग किमी.	जल आयतन क्यूबिक मी.	कुल प्रतिशत में
1. स्थल जल			
ताजे पानी की झील	860,000	1,25,000	0.009
खारे पानी की झील	7,00,000	1,04,000	0.008
अंतः समुद्र			
धाराओं में औसत जल	—	1,250	.0001
2. अधःस्थल जल	13,00,00,000	—	
मृदा, नमी व अंतरवर्ती जोन		67,000	0.005
800 मीटर तक भूमिगत जल		41,70,000	0.31
गहरे स्थित भूमिगत जल		41,70,000	0.31
कुल स्थल क्षेत्र में जल		86,37,000	0.63
3. हिम छत्रक व ग्लेश्यिर	1,80,00,000	2,92,00,000	2.1
4. वायु मंडल	51,00,00,000	13,000	0.0
5. विश्व समुद्र	36,00,00,000	1,32,20,00,000	9
6. कुल		1,36,00,00,000	

WWW.GRADESETTER.COM

WWW.GRADESETTER.COM

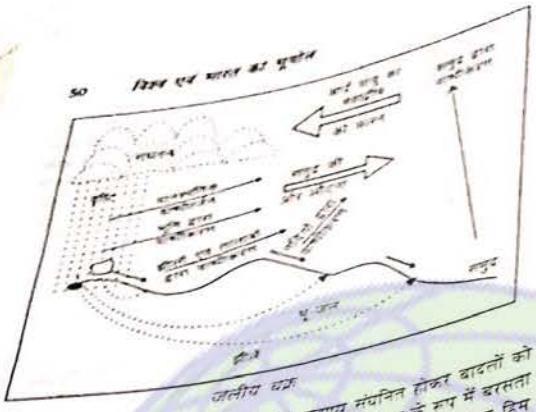

का वाष्पन होता है और वायुमण्डल में यह जलवाष्प संघनित होकर बादलों को जन्म देता है। यह जल वर्षा के रूप में धरती पर गिरता है। इस जल का एक भाग धरती द्वारा सोख लिया जाता है व एक भाग हिम के रूप में जमा हो जाता है परंतु अधिकांश भाग बहकर पुनः समुद्रों, झीलों व नदियों में आ जाता है। इस प्रकार जल चक्र पूर्ण होता है। स्थल भाग द्वारा अवशोषित जल भी आंतरिक अपवाह के माध्यम से पुनः समुद्र में पहुंच जाता है। स्थल, समुद्र व वायुमण्डल में ठोस, द्रव व गैसीय अवस्था में उपस्थित जल की मात्रा में अत्यधिक अंतर पाया जाता है।

भूमिगत जल

वर्षा का जल, धरातल से कुछ अंश भाप बनकर उड़ जाता है, कुछ बहकर नष्ट हो जाता है और कुछ धरातल की ऊपरी सतह से रिसकर नीचे चला जाता है। इस प्रकार पारगम्य चट्टानों के खाली स्थानों में एकत्रित हुए जल को भूमिगत जल कहते हैं। चूंकि यह जल ऊपरी सतह के नीचे मिलता है इसलिए इसे अधः तल जल (sub-surface water) भी कहते हैं। भू-पटल के नीचे कुछ गहराई के उपरांत सभी शैल-रंध्र जल से संतृप्त रहते हैं। भूमि में इस संतृप्तता की ऊपरी सीमा को ही भूमिगत जल-तल (Water Table) अथवा संतृप्तता का तल कहा जाता है।

असंतृप्त क्षेत्र में भू-पटल के ऊपर का जल रिस-रिसकर एकत्रित होता रहता वास्तव में यह भूमिगत जल का सबसे ऊपर का भाग होता है। इस भाग ानें बहुत रन्ध्रपूर्ण होती हैं चट्टानों के ये रन्ध्र प्रायः वायु से भरे रहते हैं। से रिसकर आने वाले जल का कुछ अंश वायु के कारण यहां की चट्टानों में ही रुक जाता है। इसी कारण इस क्षेत्र को पवन मिश्रित क्षेत्र अथवा क्षेत्र भी कहा जाता है।

प्त **क्षेत्र** में ऊपर के असंतृप्त क्षेत्र से बड़ी मात्रा में जल रिस-रिस कर ता है, जिसमें यहां रन्ध्रपूर्ण चट्टानें जल से पूरी तरह भारी रहती हैं। क्षेत्र को संतृप्त क्षेत्र कहा जाता है।

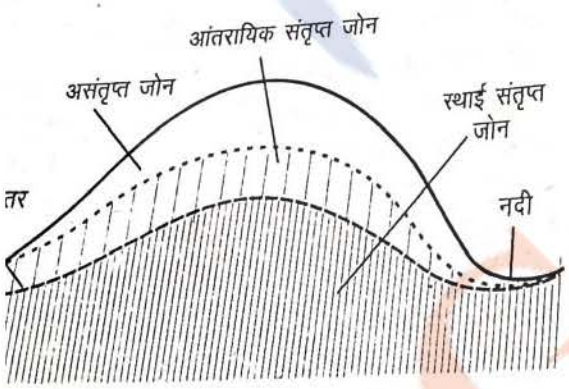

भौमजल अवस्थल जल का वह भाग है जो गुरुत्वाकर्षण के कारण सतह के भौमजल संग्रहण करने के पश्चात् मृदा व आधार शैल पर एकत्र होता है। जैसे-जैसे कूपक जल से, झीलों व तालाबों के जल के आंतरिक रिसाव से जल प्राप्त होता है। वर्षा का जल या जल सिंचित क्षेत्रों के जल के शैल में केंद्रित हो जाने से प्राप्त है। वर्षा का जल या जल सिंचित के समय जल गुरुत्वाकर्षण के प्रभाव के कारण नीचे की ओर गति करता है। में पृष्ठ जल गुरुत्वाकर्षण के प्रभाव के कारण नीचे की ओर गति करता है। अपारगम्य शैल पर पहुंचता है। धीरे-धीरे शैल के ऊपर की मृदा पहले संतृप्त होती है व इस प्रकार एकत्र जल भौमजल जोन की रचना करता है। भौमजल एवं पृष्ठ जल में बहता जल आपस में एक-दूसरे को प्रभावित करते हैं। भौम जल निम्नलिखित प्रकार का हो सकता है—

1. उत्का जलः उद्गम से प्राप्त।
2. प्राथमिक या मैग्मज जल (juvenile water): यह जल पृथ्वी की अत्यंत गहराई में परिवर्तनों का परिणाम होता है।
3. सहजात जलः पुरातन समुद्री जल के अवशेष।
4. मैग्मज जल (magmatic water): यह जल पृथ्वी की अत्यंत गहराई में ज्वालामुखी की ऊष्मा एवं जलयुक्त चट्टानों की क्रिया से बनता है।

भौम जल स्तर

यह जल संतृप्त शैलों की ऊपरी सतह क्षेत्र में होता है। सतह के नीचे तीन जल-जोन होते हैं। पहले जोन में शैलों के सरंध्र सदैव जल से भरे रहते हैं। इसे स्थाई संतृप्त जोन कहते हैं। दूसरे जोन में शैलों के संरंध्रों में जल केवल भारी वर्षा के पश्चात् एकत्र होता है इसे आंतरायिक संतृप्त जोन (intermittent saturation zone) कहते हैं। तीसरा जोन सतह के नीचे होता है जिसके संरंध्रों में से जल ही के गुजरता है, यह जोन असंतृप्त जोन कहलाता है।

भौम जल स्तर प्रायः सपाट नहीं होता एवं न ही सतह के उच्चावच को अभिगमन करता है। भौम जल स्तर पर्वतों के शीर्ष पर गहरे होते हैं व घाटी में उनका स्तर ऊंचा होता है। भौम जल स्तर में ऋतुओं के अनुसार परिवर्तन होता रहता है। जहां भौम जल स्तर सतह को किसी विंदु पर काटता है वहां स्रोत, कुछ व झरने फूट पड़ते हैं। यदि मुख्य भौम जल स्तर के ऊपर व सतह से नीचे जल एकत्र हो जाये तो इसे दुःस्थित भौम जल स्तर (parched water table) कहते हैं। यह तब होता है जब मृदा की अल्प-पारगम्य परत जल के नीचे गमन को बाधित करती है।

भौम जल के स्रोत

झरनेः झरनों एवं निस्पंद स्थल (seepage) के रूप में भौम जल मृदा व शैल संरंध्रों व तलछट से रिस कर पुनः सतह पर दृष्टिगोचर होता है। रिसाव के माध्यम से जल धीमी गति से बाहर निकलता है जबकि जहां भौम जल स्तर सतह को प्रतिच्छेदित करता है वहां झरने के रूप में तेजी से जल विकसित होता है। उदाहरण के लिए स्कार्प ढलान के आधार पर जहां पारगम्य शैल जैसे क्ले इत्यादि होते हैं। वहां स्कार्प-फुट झरने पाये जाते हैं। सदानीरा (perennial stream) प्रायः आधार शैल में पाये जाते हैं एवं ये झरने बारह महीने बहते रहते हैं। उथले झरने प्रायः चूने के पत्थर जैसे अत्यधिक पारगम्य शैलों से निकलते हैं व केवल

गर्म जल का उष्ण स्रोत के रूप में निकास

उष्णोत्स
अतिसंकीर्ण निकास मुख द्वारा बाधित भाप

WWW.GRADESETTER.COM